प्रगतिवादी शिक्षा में इन्द्रि

फ्रोबेल तथा मांटेसरी विधि

लेखक

रामखेलावन चौधरी, एम० एड

प्रकाशक

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लख

पहली बार, ५००]   फरवरी, १९५५

विषय-सूची

❀ भूमिका ❀

प्रगतिवादी शिक्षा-आन्दोलन ने शिक्षाचार्यों का ध्यान शिक्षण विधि में सुधार करने की ओर आकर्षित किया। उन्होंने अनुभव किया कि बालकों का प्रारंभिक विकासकाल शिक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है और इंद्रियों की परिपक्वता (Maturation) और उनके अभ्यास (Training) का बालकों के मानसिक विकास में बहुत बड़ा हाथ है। ज्ञानोत्पत्ति के लिए इंद्रिय-शिक्षा की आवश्यकता है। फ्रोबेल ने, इंद्रिय-शिक्षा के लिए एक नवीन शिक्षण विधि तैयार की, जो छोटे बच्चों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। मेरिया मांटेसरी ने उसके कार्य को आगे बढ़ाया और कुछ हेर-फेर के साथ एक और नयी विधि का जन्म हुआ। इन दोनों नयी विधियों का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक में देने की चेष्टा की गई है। साथ में उपर्युक्त शिक्षाचार्यों के सिद्धांतों का विवेचन और गुण-दोषों का उल्लेख भी किया गया है। उद्देश्य यह है कि शिक्षा-स्नातक यह समझ लें कि फ्रोबेल और मांटेसरी ने जो कुछ कहा है, वह ब्रह्म-वाक्य नहीं है। (खेद है, किंडरगार्टेन तथा मांटेसरी स्कूलों में शिक्षणविधि पर प्रयोगात्मक कार्य नहीं किये जाते और आँख बन्द करके केवल अनुकरण किया जाता है।) यदि यह पुस्तक आज के शिक्षा-स्नातकों को भविष्य में, शिक्षक बनने पर परिष्कार तथा संशोधन कार्य को आगे जारी रखने में प्रेरणा दे सकी, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

—लेखक

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	के स्थान पर	पढ़िये
७	५	उन्मुख	उन्मुक्त
१०	५	फोमेनियस	कोमेनियस
१०	२३	उद्योग	प्रयोग
१०	२७	Edcation	Education
११	१७	अपनी विधि	अपनी विधि में
१२	४	Developmemt	Developmen
१६	१८	घन	घन
२०	१३	वर्णों	कर्णों
२१	४	½	१½
२१	१५	उत्पन्न	के उत्पन्न
२८	१३	न्यून कोण आदि को 'न्यूनकोण' जैसा मिलाकर पढ़िये	
२८	२२	प्रश्नात्तर विधि	प्रश्नोत्तर विधि
२८	२५	गर	गैर
३०	२६	Embroidary	Embroidery
३१	२२	पत्यच्च	प्रत्यक्ष
३२	२७	आद होते ह	आदि होते हैं
३३	३	Imoge	Image
३६	११	अभिमानगीत	अभियानगीत
३७	४	शिक्षाशात्रियों	शिक्षाशास्त्रियों
३७	१७	उधर	उधर अन्य
३६	११	Make beleive	Make believe
४२	२३	प्रभाव	अभाव
४५	२२	मःस्तष्क	मस्तिष्क
४७	२०	Experion	Empiricism
४७	२३	मनुष्य का मत	मनुष्य का मन
५०	१०	Rousseru	Rousseau
५२	२	Childrens	Children's
५२	७	स्वर्गनुल्य	स्वर्गतुल्य
५५	१६	Cylenders	Cylinders
५६	१	बलन	बेलन
५८	१३	Geometricah	Geometrical
६३	१०	त्वर्णों में	त्वर्णों में आत्मा
६३	१७		सहयोग की भावना
६४	३	नारू	नाम
७५	१	Steron	Stern

प्रगतिशील शिक्षण-विधियाँ

प्रगतिशील आन्दोलन का प्रारम्भ रूसो के क्रांतिकारी विचारों द्वारा प्रारंभ होता है। रूसो के शिक्षा-सम्बन्धी विचारों और उसकी पुस्तक इमील (Emile) के विषय में कुछ अधिक विस्तार से हम प्रारम्भ में लिख चुके हैं। उसका मूल सिद्धांत है—शिक्षा का केन्द्र बालक है। बालक का महत्व बढ़ जाने से शिक्षा में मनोविज्ञान का महत्व बढ़ गया। पेस्तलाजो, हरबार्ट और फ्रोबेल ने प्रत्येक बालक को उसकी रुचि, बुद्धि और योग्यता के अनुसार पढ़ाने पर जोर दिया। साथ ही साथ बालकों को सामाजिक कार्यों में उत्तरदायित्वपूर्ण भाग लेने के योग्य बनाने पर भी जोर दिया जाने लगा। प्रगतिशील शिक्षा का एक पहलू सामाजिकता है। इस पहलू को सामने लानेवाले अमरीकी शिक्षा-शास्त्री जॉन डिवी हैं। इस प्रकार, बालक का व्यक्तिगत विकास और बालकों में सामाजिकता की अभिवृद्धि—यह प्रगतिशील शिक्षा के दो मुख्य पहलू हैं।

उक्त पहलुओं पर ध्यान रखकर शिक्षाशास्त्रियों ने, सर्वप्रथम प्राचीन समूह शिक्षण-विधियों—जैसे कथन-विधि, भाषण-विधि और प्रश्नोत्तर विधि आदि से असंतोष प्रकट किया और पढ़ाने की नयी विधियों के आविष्कार का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। उस प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप अनेक शिक्षण-विधियों का जन्म हुआ जिनका वर्णन हम यथा-प्रसंग करेंगे। इस समय केवल हम यह बतायेंगे कि प्रगतिवादी शिक्षा के आन्दोलन से जितनी शिक्षण-विधियों का जन्म हुआ उनकी मुख्य विशेषतायें क्या हैं।

(क) *सारी शिक्षा का केन्द्र-बिंदु बालक है*—प्रगतिशील शिक्षण विधियों में बालक का मुख्य ध्यान रक्खा..जाता है। स्कूल की एक एक चीज, शिक्षक, इमारत, फर्नीचर, पुस्तकें, खेल सभी बालक के शारीरिक, मानसिक और भाव-विकास को ध्यान में रखकर तैयार की जाती हैं। बालक के सर्वांगीण विकास का ध्यान रक्खा जाता है। विकास की इस प्रक्रिया को अधिक से अधिक दिनों तक चालू रखने में लाभ है इसीलिये पढ़ाने में जल्दबाजी नहीं की जाती। बालक उतना ही सीखता है जितना वह आसानी से पचा सकता है।

(ख) *निजी प्रयत्न द्वारा सीखना*—प्राचीन शिक्षण-विधियाँ बालक को सिखाने पर जोर देती हैं। प्रगतिशील-शिक्षण-विधियाँ बालक को स्वयं सीखने देती हैं। बालक अपने निजी प्रयत्न द्वारा सीखता है। वह स्वयं ज्ञान की खोज करता है; ज्ञान का बोझ ऊपर से उस पर लादा नहीं जाता।

(ग) *बालक को जीवन का अनुभव करने का अवसर*—प्रगतिशील शिक्षा के अनुसार बालक को जीवन की वास्तविकता का अनुभव कराया जाता है। स्कूल और जीवन दो अलग चीजें नहीं मानी जाती हैं। बालकों को किताबी कीड़ा नहीं बनाया जाता। वे उन सारी समस्याओं का परिचय प्राप्त करते हैं जो देश और समाज के सामने हैं।

(घ) *पुस्तकों पर जोर नहीं देते*—नयी शिक्षण-विधियाँ पुस्तकों का अधिक महत्व नहीं देतीं। पुस्तकें तो केवल साधन मात्र हैं। पुस्तकें केवल लिखित अनुभव हैं। अनुभव करने का जब बालकों को अवसर दिया जाता है तो पुस्तकें इतनी जरूरी नहीं रह जातीं।

(ङ) *बालकों की स्वतंत्रता*—बालक का महत्व बढ़ जाने से, बालक की स्वतंत्रता को स्वीकार करना आवश्यक हो गया। पुस्तकों का, अनुशासन का और समय-चक्र (Time-table) आदि के बंधन नष्ट कर दिये गये। बालकों को पढ़ने में इस बात की पूरी छूट है कि वे जब

चाहें और जो चाहें पढ़ें। स्वतंत्र बालकों की हैसियत से वे उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से स्कूल की व्यवस्था तक अपने आप कर लेते हैं।

(च) *क्रिया* (activity) *और खेल*—पुरानी शिक्षण-विधियों से पढ़ाते समय बालक श्रोतागणों की भाँति निश्चल भाव से बैठे रहते हैं। प्रगतिशील शिक्षण-विधियाँ बालकों के उन्मुक्त जीवन की समर्थक हैं। बालक आपस में खूब मिल-जुलकर काम करते हैं, बातें करते हैं, खेलते हैं। स्कूल में श्मशान के नहीं, वरन् जीवन के दर्शन होते हैं।

(छ) *बालकों में सामाजिकता*—आधुनिक-युग प्रजातंत्र का है। सहयोग, कर्तव्यपालन, उत्तरदायित्व, मैत्री जैसे सामाजिक गुणों की बालकों में अभिवृद्धि करके एक स्वस्थ समाज का निर्माण किया जा सकता है। अतः नवीन शिक्षण-विधियों द्वारा बालकों में यह गुण पैदा किये जाते हैं। स्कूलों में बालक बैंक, पोस्टआफिस, मासिक-पत्रिका और समितियाँ चलाते हैं और समाज के लिये उपयोगी नागरिक सिद्ध होते हैं। उन्हें आपस में परामर्श करने और एक-दूसरे से मिलजुल करके काम करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। संगठन उत्पन्न करने के लिये व्यक्तिगत प्रतियोगिता (competition) को जड़ से उड़ा दिया जाता है। पारितोषिक और प्रमाणपत्रों द्वारा व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने की भावना पुष्ट होती है। इसी से प्रतियोगिता, ईर्ष्या और द्वेष के अवगुण पैदा हो जाते हैं। सामाजिकता के लिये यह हानिकारक है। इसलिये इनको शिक्षण-विधियों में कोई स्थान नहीं दिया जाता।

(ज) *शिक्षक सहयोगी और सहायक के रूप में*—प्रगतिशील शिक्षण में अध्यापक और विद्यार्थी का समान उत्तरदायित्व रहता है। विद्यार्थी अपनी शक्ति भर सीखने का उद्योग करता है और शिक्षक सहारा देता है, सहायता करता है, पथ-प्रदर्शन करता है। बालकों को पढ़ने के लिये वह यथासम्भव सारे साधन जुटा देता है, बालक स्वयं पढ़ते हैं,

परन्तु जहाँ वे अटक जाते हैं वहीं अध्यापक उनकी कठिनाइयों को हल कर देता है।

(झ) हाथ के काम का महत्व—प्राचीन शिक्षा में मानसिक कार्य की प्रधानता थी। हाथ का काम नीची दृष्टि से देखा जाता था। प्रगतिशील शिक्षण में हाथ के काम को उचित स्थान दिया गया है। दस्तकारी, चित्रलेखन (Drawing), धुलाई, सफाई, यहाँ तक कि मिट्टी का काम जैसे बागबानी आदि का प्रबन्ध किया जाता है।

कुछ दोष (१) प्रगतिशील शिक्षा आन्दोलन का शिक्षण विधियों पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा है। हरमैन एच० हार्न का कथन है कि शिक्षा में प्रगतिवाद के कारण शिक्षण-विधि में बड़ी उन्नति हुई है। बालक जो कुछ सीखते हैं, किसी न किसी उद्देश्य से सीखते हैं और उन्हें स्कूल में ही जीवन की झलक मिल जाती है। आज के स्कूल प्रयोगात्मक विज्ञानशाला तथा वर्कशाप की तरह हैं और उनमें प्रतिक्षण नये-नये प्रयोग हर समय होते रहते हैं। प्रगतिवादी शिक्षा के समर्थक नवीन शिक्षण-विधियों की प्रशंसा करते नहीं अघाते, परन्तु परम्परावादी शिक्षाशास्त्री इन विधियों के घोर विरोधी रहे हैं। उनकी आलोचना का मुख्य आधार यह है कि इन विधियों से पढ़ाई करने पर बालक को स्कूल में, जिस जीवन का अनुभव होता है, वह ठीक वही है जो हमें बाहरी दुनिया में देखने को मिलता है। क्या यह जीवन पूर्ण है ? क्या इसमें कोई दोष नहीं ? वास्तव में यह सांसारिक जीवन अपूर्ण और दोषपूर्ण है। शिक्षा का उद्देश्य तो जीवन को अधिक से अधिक सुसंस्कृत बनाना है। इसके विपरीत नवीन शिक्षण द्वारा केवल उस जीवन का अनुभव होता है जो अपूर्ण है। शिक्षण में नग्न यथार्थवाद के समावेश से समाज की अपार क्षति होगी।

(२) कुछ आलोचकों ने कहा है कि पाठ्य-विषयों का चुनाव भी, इन विधियों में नहीं किया जाता। बालकों की रुचि पर निर्भर रह कर, पढ़ाई कराना ठीक नहीं जँचता। बाल्यकाल में रुचियाँ परिष्कृत नहीं

होतीं। वास्तव में शिक्षा का उद्देश्य तो चरित्र-निर्माण ही है; कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान में अभिरुचि उत्पन्न करना शिक्षा का उद्देश्य है। प्रारम्भ में बालक इन सबसे अनभिज्ञ रहते हैं। यदि नवीन विधियों से पढ़ाई जारी रहे, तो बालक की खेल-कूद तक ही दृष्टि सीमित रह जाती है। आज मानव संस्कृति कितनी जटिल हो गई है—इसका आभास तक बालकों को नहीं हो पाता। गणित, तर्क, भाषा जैसे विषयों की पढ़ाई इन विधियों द्वारा सफलतापूर्वक नहीं हो पाती। वर्तमान बालकों की अयोग्यता चिंता का विषय है। शिक्षण का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। डा० बटलर का कहना है कि बालकों को एक शब्द भी ठीक से लिखना नहीं आता।

(३) विद्वान शिक्षा-शास्त्री बैगले (Bagley) का विचार है कि इन विधियों से पढ़ाई के परिणामों पर यदि विचार किया जाय तो मन को बड़ा असंतोष होता है। बालकों में उच्छृंखलता और अनुशासन-विहीनता जैसे दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। अध्यापक पर से बालकों की श्रद्धा और विश्वास उठ जाता है। सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक व्यवस्थायें बालकों को पसंद नहीं आतीं। इससे प्रत्येक क्षेत्र में अव्यवस्था फैलने का भय है। निकोलस मरे बटलर (Nicholas Murray Butler) ने कहा है कि वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ विचारों में भी वर्तमान युग में बड़ी उन्नति हुई है। वर्तमान शिक्षण-विधियों में वैज्ञानिक तत्व अधिक हैं; विचारात्मक-प्रगति का तनिक भी, अनुमान बालकों को नहीं होता। फलतः जिन्हें हम प्रगतिशील शिक्षण-विधि कहते हैं; वास्तव में वे पिछड़ी हुई शिक्षण-विधियाँ हैं। इन विधियों से पढ़ाई का परिणाम यह हो रहा है कि मानव-समाज उदरपोषण को ही ध्येय समझने लगा है। गाय, भैंस की तरह पेट भर लेना ही क्या जीवन का उद्देश्य है ?

इन आलोचनाओं का परिणाम यह हुआ है कि शिक्षण-विधियों की प्रगति को गहरा धक्का इन दिनों लगा है। प्रयोग करनेवाले कुछ सक्षम

गये हैं। सबका ध्यान नवीन विधियों में अधिक से अधिक सुधार करने की ओर जा रहा है। अब हम प्रगतिशील शिक्षण-विधियों का विस्तार से वर्णन करेंगे।

(१) फ्रोबेल की बालोद्यान-विधि (Kindergarten Method)

सबसे पहले प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री कोमेनियस ने पढ़ाने में प्रकृति का अनुसरण करने की सलाह दी थी। शिक्षण में प्रकृति से सहायता लेने के लिए, उसने कुछ सूत्र भी तैयार किये, परन्तु व्यावहारिक रूप से प्रकृति के पद-चिन्हों पर चलनेवाले फ्रोबेल महोदय थे। जिस प्रकार उद्यान में पौदा लगाया जाता है और माली उसे पानी तथा खाद देकर उचित ढंग से बढ़ने में सहायता देता है, ठीक उसी तरह स्कूलरूपी बाग़ में, शिक्षकरूपी माली, बालकरूपी पौधे को सब प्रकार से विकसित करने में सहायता देता है। इस रूप के आधार पर फ्रोबेल ने बालोद्यान विधि चलाई। इसी भाव को व्यक्त करते हुये, इस विधि को 'किंडर गार्टेन' की संज्ञा दी गई। 'किंडर' का अर्थ है बालक रूपी पौधा और 'गार्टेन' का अर्थ है उद्यान। इन दोनों शब्दों के योग से बने हुये शीर्षक से, इस विधि के उद्देश्य का बोध होता है।

फ्रोबेल एक प्रसिद्ध दार्शनिक तथा शिक्षा-शास्त्री था। जीवन के संघर्षों ने उसे तत्वज्ञानी बना दिया और प्रकृति के साहचर्य से उसने 'प्रकृति का महत्व' सीखा। शिक्षा में उसे प्रारंभ से ही बड़ी रुचि थी। प्रसिद्ध शिक्षाचार्य पेस्तालाजी से उसने बहुत-कुछ सीखा। येना विश्व-विद्यालय में उसने जर्मन दार्शनिक फिक्टे की विचार-धारा का अध्ययन किया और पेस्तालाजी के आदर्श विद्यालय में शिक्षण-सम्बन्धी अनुभव प्राप्त करके वह इसी क्षेत्र में जुट गया। ईवरडून में उसने कई उद्योग किये। अंत में उसने कोइलहाउ में एक विद्यालय खोला और यहीं पर उसने किंडर-गार्टेन-विधि का आविष्कार किया।

कोइलहाउ में प्राप्त, उसके शिक्षा-सम्बन्धी अनुभव उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'मनुष्य की शिक्षा' (Edcation of Man) में संग्रहीत हैं।

इसी पुस्तक के आधार पर हम पहले फ्रोबेल के शिक्षा-सिद्धांन्तों का विवेचन करेंगे जिसमें हम उसकी विधि को अच्छी तरह समझ सकें। फ्रोबेल ने जो कुछ लिखा है वह बहुत ही स्पष्ट तथा व्यवस्थित ढंग से लिखा है।

फ्रोबेल का दर्शन

(१) *अखिल विश्व की एकता*—फ्रोबेल अद्वैतवादी दार्शनिक है। उसका मत है कि विश्व में एक तत्व की ही प्रधानता है। ईश्वर, जीव और प्रकृति, सभी की रचना उसी एक तत्व से हुई है। अपने इस सिद्धांत की व्याख्या करते हुए उसने लिखा है:—

"सृष्टि के सभी पदार्थों में एक शाश्वत नियम व्याप्त होकर शासन करता है। यह सर्वशासक नियम निश्चय ही किसी सर्वव्यापक, स्फूर्तिमान सजीव चेतन तथा सार्वभौम अभिन्नता या 'एकता' पर अवलंबित है। एक एकता ही ईश्वर है। सब पदार्थ उसी विराट् दैवी एकता से प्रादुर्भूत हुए हैं और उसी में उनका मूल है। सब पदार्थ उसी दैवी एकता या ईश्वर में बंधे रहकर जीते रहते हैं। प्रत्येक पदार्थ में जो दैवी स्फुरण होता है, वही उस पदार्थ का चेतन-तत्व है।"

शिक्षा का उद्देश्य इसी 'एकता' का बोध कराना है। अपनी विधि फ्रोबेल ने उपहारों (Gifts) का आयोजन इसी उद्देश्य से किया है।

(२) *विश्व में दिखाई पड़ने वाली अनेकरूपता का कारण*—फ्रोबेल के दर्शन का मुख्य सूत्र 'एकता' Unity) है, परन्तु वस्तुओं के और जीवों के आकार-प्रकार में हमें एक बड़ी विभिन्नता दिखाई देती है। यह रूपांतर क्यों पैदा हो गया ? दुनिया में हमें सब वस्तुएँ अलग-अलग क्यों दिखाई देती हैं। इस प्रश्न का जो-कुछ उत्तर फ्रोबेल ने दिया, वह 'विकासवाद' के सिद्धान्तों से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि फ्रोबेल विकासवादी है। वास्तव में तो वह आदर्शवादी

(Idealist) और आध्यात्मवादी (Spiritualist) है, परन्तु उसके तर्क जड़वादियों के तर्कों के समान हैं। उसका कहना है कि जन्म के समय प्रारंभिक दशा में प्रत्येक वस्तु का रूप एक तरह का होता है परन्तु वृद्धि (Developmemt) की दशा में, उसके रूप में बहुत अंतर उत्पन्न हो जाता है। (इसी तरह डारविन ने भी कहा है कि आदि जीव एक था और आजकल हम जो अनेक प्रकार के जीवधारी देखते हैं, उनकी यह भिन्नता, कालान्तर में विकास के कारण हुई है।) यह विभिन्नता वास्तविक नहीं है। इस बात का बोध कराना शिक्षा का उद्देश्य है। उपहारों की सहायता से यह बात समझाई जाती है। एक उपहार को अनेक छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित करके और अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों से फिर समूचा उपहार बना करके, इस 'एकता' और अनेकता का बोध कराया जाता है।

(३) *विकास या वृद्धि का महत्व*—हम ऊपर देख चुके हैं कि जीवों और बनस्पति में दिखाई पड़ने वाला रूपांतर वृद्धि के कारण होता है। इसलिए विश्व को, प्रकृति को और स्वयं अपने को समझने के लिए इस विकास या वृद्धि की क्रिया (process) को समझना जरूरी है। जिस काल में बालक शिक्षा प्राप्त करते हैं, वही उनका विकास-काल माना जाता है। अतः इस क्रिया को समझे बगैर 'शिक्षा' पूर्ण नहीं बनाई जा सकती।

(४) *वृद्धि कैसे होती है?*—जिस तरह पेड़-पौधे या प्रकृति के दूसरे अंग बढ़ते हैं उसी तरह बालक की भी वृद्धि होती है। जैसे एक पेड़ को खींच-खींचकर नहीं बढ़ाया जा सकता, उसी तरह बालकों के शारीरिक तथा मानसिक विकास को बाहरी नियमों की सहायता से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। पुराने ढंग की पढ़ाई में बच्चों पर इसलिये जोर-दबाव डाला जाता है कि वे विद्वान बन सकें। क्या यह चेष्टा कभी सफल हो सकती है? विकास में कभी जोर-जबर-

इसी नहीं चल सकती । वास्तव में बालक की मानसिक और शारीरिक वृद्धि एक विशेष क्रिया द्वारा होती है जिसमे 'आभ्यन्तर गति' (Inner process) कहते हैं। इसकी उद्भावना फ्रोबेल ने मनोवैज्ञानिक ढंग से की है। यदि हम आधुनिक मनोवैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग करें तो, इसे हम 'प्रौढ़न' (Maturation) कह सकते हैं। बालक की वृद्धि इसी सिद्धान्त के अनुसार होती है। आम के पेड़ में फल तभी लगते हैं, जब फल लगने का समय आता है और जब पेड़ फल लगने योग्य हो जाता है। बालक का 'चलना' या 'बोलना' उस समय आता है, जब उसके पैर और मुँह के अंग पुष्ट हो जाते हैं। बालकों के सारे अंगों की 'पुष्टि' या 'वृद्धि' के समय को जानना, उनकी सहज चित्तवृत्तियों का अध्ययन करना ही, इस आभ्यन्तर गति को समझना है। इस गति को समझने की आवश्यकता इसलिए है कि यह गति सहज (Inborn) है। इस गति को अध्यापक न तो रोक सकता है और न उसे उत्तेजन (Acceleration) ही दे सकता है। वह जिस तरह से होती है, उसी तरह होगी और होती रहेगी। अध्यापक का कार्य केवल ऐसा प्रबंध करना है, जिससे इस गति में बाधा न पड़े और उसे ऐसे साधन जुटाने चाहिएँ जिससे बालकों को विकास में सहायता मिले। जिस तरह माली पौधों की वृद्धि के लिए खाद और पानी जुटाता है, उसी तरह अध्यापक बालकों की शिक्षा के लिए उपहार, खेल, बागवानी और दस्तकारी का प्रबंध करता है। किंडरगार्डन-विधि के सारे उपकरण 'आभ्यन्तर गति' की सहायता के लिए चुने गये हैं।

(५) *मनुष्य आध्यात्मिक प्राणी है* (Spiritual Being) है—फ्राबेल के मतानुसार मनुष्य केवल शरीरधारी (Physical being) ही नहीं है, अपितु वह एक आध्यात्मिक प्राणी है; इसलिए वह साधारण जीवों से श्रेष्ठ है। उसमें आत्मा है, जो ईश्वर का अंश है। मनुष्य

का कर्तव्य है कि वह अपने-आपको पहचाने। शिक्षा का उद्देश्य, इस आत्म-साक्षात्कार में सहायता देना है। फ्रोबेल की यह विचारधारा भारतीय 'चिंतन-शैली' से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। वास्तव में शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपनी आत्मा में प्रसुप्त शक्तियों को पहचान लेता है।

फ्रोबेल ने एक स्थल पर लिखा है कि बालक में यह आध्यात्मिकता सहज (Inborn) है। उसने यह सिद्ध किया है कि बालक के आगे जिस समय गेंद लटकाया जाता है, और वह उस गेंद को हिलते तथा चक्कर लगाते हुए देखता है, तो उसे बड़ा आनंद आता है। स्वभावतः उसका ध्यान उस डोरी पर जाता है, जिसके सहारे गेंद लटका होता है। तुरंत ही उस डोरी के सहारे उसकी दृष्टि उस हाथ पर जाती है, जो उसे पकड़े रहता है। इसी तरह प्रकृति के प्रांगण में होनेवाली घटनाओं को देखकर (जैसे सूर्य और चंद्रमा जैसे गोलों को आकाश में लटकते देखकर) उसे परमपिता ईश्वर का ध्यान आने लगता है। उसे बादलों के गर्जन में ईश्वर का स्वर तथा धूप में उसकी मुस्कान का आनंद मिलता है। इसीलिये फ्रोबेल ने अपनी विधि में इस बात पर जोर दिया है कि संगीत का पाठ पढ़ाने के पहले, बालक को निर्झर का नाद, सरिता का कलकल और तरु की डालियों की खड़खड़ाहट सुनाकर उसके कानों को दैवी संगीत का अभ्यस्त बना देना चाहिए।

(६) *खेलों की आवश्यकता*—शिक्षा का प्रारंभ उसी समय से होने लगता है, जब बालक अपने आस-पास की वस्तुओं में दिलचस्पी लेने योग्य बन जाता है। स्वभाव से ही बालक प्रत्येक वस्तु के साथ खेलना चाहता है। इसलिये खेल को शिक्षा का माध्यम बनाना उचित है। खेलों की दूसरी उपयोगिता यह है कि इसमें क्रिया (Activity) का समावेश होता है। क्रिया द्वारा बालक को आनंद भी मिलता है। कार्लग्रूस की भाँति फ्रोबेल का भी यही विचार है कि खेलों द्वारा बालक के भावी जीवन का सूत्र हमें मिल जाता है। जो बालक खेल में रुचि

लेता है, ईमानदारी से खेल खेलता है, वही जीवन में भी सफल होता है। किंडरगार्टेन में इसी दृष्टि से खेलों की व्यवस्था की गई है। और यह खेल इस प्रकार से खिलाये जाते हैं कि बालक बड़ी सरलता से गूढ़ आध्यात्मिक तत्वों को सीख लेता है। किंडरगार्टेन विधि में खेलों का आयोजन एक और दृष्टि से भी किया गया है। खेल में बालक को शारीरिक श्रम भी करना पड़ता है। अतः वह 'श्रम' में मनोरंजन प्राप्त करना सीख लेता है। साथ ही उसे हर-एक कार्य आगे चलकर खेल के समान ही प्रतीत होता है।

(७) *प्रकृति-प्रेम*—रूसो की भाँति फ्रोबेल भी प्रकृति के पुजारी हैं। उनका मत है कि प्रकृति के सम्पर्क से बालक को ईश्वर की शक्ति का आभास मिलता है। इसलिये बालकों में प्रकृति-प्रेम जाग्रत करना अत्यंत आवश्यक है। फ्रोबेल की विधि के लिये एक प्रकृति-तुल्य उद्यान होना अनिवार्य है। तरुओं की डालियों पर बैठने, पक्षियों का कलरव सुनने और वायु का स्पंदन अनुभव करने में बालकों को अपूर्व तृप्ति मिलती है। पशु-पक्षियों से वे प्रेम करने लगते हैं और यही प्रेम आगे चलकर मानवता-प्रेम में परिणत हो जाता है। पौधों के लगाने और पशुपालन से उनमें अनेक गुण पैदा होते हैं। वे समझने लगते हैं कि जिस वस्तु को पाल-पोस कर बड़ा किया जाता है, उसे नष्ट करना अनुचित है।

(८) *श्रम का उपयोग*—खेलों के प्रसंग में हम श्रम का महत्व बता चुके हैं। श्रम करने के लिए किंडरगार्टेन में बागवानी (Gardening) की व्यवस्था है। श्रम से कई लाभ होते हैं। एक तो श्रम द्वारा किया गया काम कभी भूलता नहीं है। रूसो का मत है कि बालकों को जो बात जबानी बताई जाती है उसे वे भूल जाते हैं परन्तु जिसे सीखने में उन्हें स्वयं श्रम करना पड़ता है, उसे वे कभी नहीं भूल सकते। दूसरे, श्रम के बिना कोई भी रचनात्मक कार्य नहीं किया जा सकता। फ्रोबेल के मता-

नुसार रचनात्मक कार्य, आध्यात्मिकता का प्रधान अंग है। अतः आध्यात्मिकता की प्राप्ति में श्रम सहायक होता है। इस विधि द्वारा शिक्षा में बालकों को विशेष रूप से यह समझाया जाता है कि आत्मोत्थान एवं समाजोत्थान के लिए श्रम करना आवश्यक है।

(९) *ज्ञानेंद्रियों की शिक्षा*—फ्रोबेल ने बालकों की ज्ञानेन्द्रियों को अभ्यस्त बनाने पर जोर दिया है परन्तु ज्ञानेन्द्रियों का शिक्षण केवल साधनमात्र है। इसका उद्देश्य प्रत्यय (Concept) विकास में सहायता देता है। ज्ञानेन्द्रियों के शिक्षण पर बहुत अधिक जोर मेरिया माँटेसरी ने दिया। इस संबंध में हम अन्यत्र विस्तार से लिखेंगे।

(१०) *'शिक्षक' का नया अर्थ*—फ्रोबेल ने शिक्षक का एक नया अर्थ बताया है। शिक्षक और विद्यार्थी का वही संबंध है, जो माली और पौधे का होता है। जिस प्रकार माली, पौधे के स्वभाव को अच्छी तरह समझ-बूझ कर, उसके लिए खाद और पानी की व्यवस्था करता है, उसी तरह शिक्षक भी बालकों की प्रकृति का अध्ययन करके, उनकी आवश्यकताओं के अनुसार, उनके विकास में सहायता पहुँचाता है। उसके लिए वह अपने अस्तित्व को बालक में विलीन कर देता है, तभी उसे बालक की अन्तःप्रवृत्तियों का पता लगता है। किंडरगार्टेन में अध्यापक या अध्यापिका का बालकों से बड़ा ही मधुर, कोमल तथा स्नेहपूर्ण व्यवहार करती है।

किंडरगार्टेन-विधि से पढ़ाई कैसे होती है ?

आवश्यक सामग्री तथा व्यवस्था

(क) *स्कूल की इमारत*—(१) *बीच का कमरा*—इमारत के बीच का कमरा, ऊँचा, हवादार, रोशनी वाला तथा अच्छे चमकीले रंग से रँगा होना चाहिए। कमरे में एक तरफ़ गैलरी होती है। कमरे की दीवारों पर सुन्दर तस्वीरें और फूलों के गमले लटके होते हैं। अध्यापक की मेज़ पर गमले सजे होते हैं। एक मेज़ पर हारमोनियम या पियानो रक्खा होता है। इसी कमरे में किसी एक तरफ़ संग्रहालय के रूप में अनेक विचित्र वस्तुओं से भरी खुली अलमारियाँ होती हैं। ये वस्तुयें या तो विद्यार्थियों द्वारा तैय्यार की गई या दर्शकों द्वारा उपहार में दी गयी होती हैं। पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ और खिलौने रक्खे होते हैं। किस प्रकार कपड़े, ऊन और अन्य वस्तुओं का शुरू से अब तक विकास हुआ, यह सब-कुछ दिखाया जाता है।

(२) *अन्य कमरे तथा उनमें रक्खे वस्तुओं के मॉडेल*—बीच के कमरे के दोनों तरफ़ और कमरे बने होते हैं। किसी कमरे में, लकड़ी की एक गज लम्बी चौड़ी चौकोर किश्तियों (Trays) में जंगल, खेत, खलिहान और रेगिस्तान आदि के दृश्य अपने स्वाभाविक रूप में छोटे मॉडेल के ढंग से बनाकर रख दिये जाते हैं, दूसरे कमरे कक्षा के रूप में प्रयुक्त होते हैं। प्रत्येक कक्षा के कमरे में २० मेजें फर्श में जड़ी हुई होती है और उनके साथ चालीस कुर्सियाँ रहती हैं। यहाँ भी दीवारों पर तस्वीरें और फूलों के गमले लटके होते हैं। हर-एक कमरा साफ़ सुथरा रहता है। हर-एक अध्यापक अपने कमरे को पाठ पढ़ाने के पहले तैयार कर लेता है।

(ख) *अध्यापक*—किंडरगार्टेन के अध्यापक का सबसे बड़ा गुण यह होना चाहिए कि वह अपने को बालकों के बीच में बालक समझे। उनकी मनोभावनाओं की गहराई तक पहुँच सके और उनका आदर करे। उसकी आवाज़ साफ और मधुर हो। वह सदा प्रसन्न रहने वाला और उदारचित्त हो। अध्यापकों को अपनी वेशभूषा तथा कपड़ों की सजावट का ध्यान रखना पड़ता है ताकि उसका बालकों पर अच्छा असर पड़े। सप्ताह में एक दिन प्रधानाध्यापक तथा अन्य-अध्यापक परामर्श के लिये अवश्य बैठते हैं तथा स्कूल-संबंधी आवश्यकताओं पर विचार करते हैं। विशेष रूप से प्रधानाध्यापक, जो इस विधि का विशेषज्ञ होता है, दूसरे अध्यापकों को नई-नई बातें समझाता है। अध्यापकों की व्यावहारिक बातों तथा अनुभवों से उसे सहायता मिलती है। आपस में सहयोग का भाव प्रबल होता है। बालकों में नैतिकता की अभिवृद्धि का विशेष ध्यान रखना उन्हें बताया जाता है। अध्यापक नित्य धार्मिक ग्रंथ का पाठ करते हैं।

(ग) *सिगनल*—अध्यापक की सहायता के लिए एक 'सिगनल' रहता है। उसमें लगे हुए एक हत्थे को अँगूठे से दबाने पर एक आवाज पैदा होती है। प्रत्येक अध्यापक के पास इसका रहना आवश्यक है। इसकी सहायता से बालकों को चलने-फिरने, बैठने, खड़े होने आदि के आदेश अध्यापक देता है। उसे घुमाने के संकेत बँधे हैं, जिनका अर्थ बालकों को बता दिया जाता है जैसे ड्रिल में बैठने के आदेश के लिए सिगनल को दबा कर नीचे करना, बालकों को एक दिशा में मोड़ने के लिए, सिगनल को उस दिशा में घुमाना; पढ़ाई के समय भूल का संकेत करने के लिए सिगनल को दो बार दबा कर आवाज पैदा करना, जिससे बालक भूल को सुधार लेता है, आदि। वास्तव में सिगनल का उद्योग अध्यापक को जोर से चीखने से बचाना है।

(घ) *स्कूल प्रारम्भ होने के समय का दैनिक कार्यक्रम*—प्रातःकाल से स्कूल प्रारंभ होता है। जैसे ही बच्चे आने लगते हैं, अध्यापक एक

कमरे में ले जाकर उनके बाहरी वस्त्रों को उतरवा देते हैं। फिर एक अध्यापक पियानो या हारमोनियम वजाना प्रारंभ करता है। वालक उसके स्वर पर मार्च (अभियान) करते हुये चलते हैं। वाद में प्रातःकालीन प्रार्थना होती है। हारमोनियम के स्वरों पर कुछ संकेत बंधे होते हैं जिनकी सहायता से वालकों को खड़े होने, हाथ जोड़ने, बैठने आदि के आदेश देते हैं। प्रार्थना के वाद वालकों को आपस में 'नमस्ते' करने और मिलने-जुलने का अवसर दिया जाता है। उस समय वह जो चाहें वात करें। इसके वाद ही उन्हें एक धार्मिक पुस्तक का पाठ पढ़ाया जाता है।

(ङ)उपहार—किंडरगार्टेन की पढ़ाई का सारा भार इन 'उपहारों' पर है। जिस प्रकार माँटेसरी-विधि में रेखागणित की शक्लों के सहारे पढ़ाई होती है, वैसे ही कुछ वस्तुयें ऐसी हैं जिनकी सहायता से किंडर-गार्टेन-विधि द्वारा पढ़ाई की जाती है। इन वस्तुओं को 'उपहार' कहते हैं। इन्हें यह नाम इसलिए दिया गया है कि वालक इन्हें पाकर बड़े प्रसन्न होते हैं। जैसे मिठाई या खिलौने भेंट के रूप में उन्हें प्रसन्न करने के लिये दिये जाते हैं, वैसे ही स्कूल में वालकों को यह 'उपहार' दिये जाते हैं। भिन्न-भिन्न रंगों, तथा आकारों के इन उपहारों की संख्या २० है पर उनमें से सात मुख्य हैं। यह सात भी लम्ब गोल, (Cylinder) गोल (Sphere) तथा धन (Cube) इन तीन आकृतियों के रूपांतर मात्र हैं। इन सात उपहारों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है :—

प्रथम उपहार—इसमें छः मुलायम ऊन की गोल गेंदें होती हैं जिनका रंग लाल, पीला, नारंगी, हरा और बैंजनी होता है। प्रत्येक गेंद के साथ उसी रंग की डोर होती है जिसके सहारे वह एक फ्रेम में लटका रहता है।

द्वितीय उपहार—इसमें एक कड़ी धातु या लकड़ी के तीन आकार-

गोल, लम्बगोल, और घन—की वस्तुएँ होती हैं जो डोरियों के सहारे फ्रेम से लटकी रहती हैं।

तृतीय उपहार—इसमें एक बड़ा घन होता है जो आठ छोटे समान आकार के घनों से मिलकर बना होता है। उन छोटे घनों को मिला कर बड़ा घन जब चाहें बना लें, जब चाहें उन्हें अलग अलग कर दें।

चतुर्थ उपहार—इसमें एक बड़ा घन होता है परन्तु यह आठ समान छोटे घनों के बजाय (Oblong) आठ ईंट की शक्ल के समान टुकड़ों से मिलकर बना होता है।

पंचम उपहार—एक उपहार समझने में कठिन है। यह बड़ी आयु के बालकों के लिये है। यह २७ छोटे घनों से मिलकर बनने वाला एक बड़ा घन होता है। इनमें तीन छोटे घनों को बीच से एक कर्ण रेखा (Diagonal) पर बाँट देते हैं जिसके ६ टुकड़े हुये। अन्य तीन छोटे घनों को बीच से दोनों कर्णों (Diagonals) पर काटकर १२ टुकड़ों में बाँट देते हैं। अब कुल २१ समूचे छोटे घन, ६ बड़े तिकोने तथा १२ छोटे तिकोने हुए। इनकी सहायता से अनेक डिजायनें तैयार होती हैं।

छठा उपहार—इसमें एक बड़ा घन होता है जो १८ बड़े तथा ६ छोटे विषम चतुर्भुजों (Oblong) से मिलकर बनता है।।

सातवाँ उपहार—दो बक्सों में भरे हुए अनेक रंग के लकड़ी के टुकड़े होते हैं जो ज्यामिति की भिन्न-भिन्न शक्लें बना सकते हैं जैसे त्रिभुज, वर्ग, समकोण, त्रिभुज आदि।

इन सात उपहारों के अतिरिक्त किंडरगार्टेन में अनेक वस्तुओं का प्रयोग होता है, वे भी उपहारों के अन्तर्गत शामिल की जाती हैं, उनके सम्बन्ध में ज्ञातव्य बातें निम्नाङ्कित हैं।

(१) १० इंच लम्बे, $\frac{3}{4}$ इंच चौड़े, और $\frac{1}{16}$ इंच मोटी, लचकदार पटरियाँ (Laths) जिन्हें हवा में हिलाने से कम्पन का स्वर उत्पन्न

होता है। (२) २ इंच लम्बी, मोटाई में दियासलाई के बराबर, गोल छड़ियाँ (३) तार के बने छल्ले (Rings) जिनका व्यास १ इंच, १½ इंच या २ इंच तक हो। (४) डोर, स्लेट, पेंसिल, (५) ड्राइंग के अभ्यास के लिए, कागज, पेंसिल, रंग का बक्स, बत्तियाँ और कैंची; (६) दस्तकारी के अभ्यास के लिए, मोती के दाने (Beads) चटाई, कार्ड बोर्ड के टुकड़े, कागज, सफेद खड़िया मिट्टी, बालू और बेंत आदि। (७) घुनघुने (Musical bells), चट्टए (Dumb bells) छड़ियाँ, १८ इंच लम्बी, रंगीन चमकदार साटन की बनी तिकोनी पट्टियाँ (Scarfs), गुलाबी, नीले, हरे, लाल, कागज के पंखे आदि।

उपहारों द्वारा शिक्षण

पहला उपहार—गेंदों की सहायता से बालक की ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा होती है। इनकी गति को देखकर आँखें, उसके गिरने या फेंकने से उत्पन्न स्वर से कान, छूने से स्पर्शेन्द्रिय, आदि की कार्य क्षमता बढ़ती है। खेलने से कर्मेन्द्रियाँ भी पुष्ट होती हैं। एक साथ खेलने से बालकों में सहयोग और मैत्रीभाव उत्पन्न होता है।

गेंद का वर्णन (प्रश्नोत्तर द्वारा) अध्यापक बालकों से प्रश्न करता है—

(१) गेंद की कैसी शक्ल है ? (गोल)

(२) इस शक्ल की और कौन चीजें तुमने देखी हैं ? (संतरा, सेब, सूर्य, चन्द्रमा)

(३) गेंद छूने में कैसा है ? (मुलायम)

(४) इस तरह की और मुलायम वस्तुएँ कौन हैं ? (बाल, कपड़े)

(५) यह गेंद किस चीज से बना है ? (ऊन)

इस तरह प्रश्नों द्वारा बालकों का ज्ञान बढ़ाया जाता है। ऊन कैसे, कहाँ पैदा होता है, यह सारी बातें बड़ी आसानी से उन्हें समझायी जा सकती हैं।

संगीत—गेंद के ऊपर एक गीत लिखा होता है। अध्यापक उसे गाकर बालकों को सुनाता है—

गेंद है सुंदर वस्तु महान,
मुझे भाता है इसका गान।
गोल है, हल्का, कोमलतर,
इसे पकड़े कर में कस कर।
ऊन से बना—जानते हो?
भेड़ से ऊन प्राप्त है जो।
प्रथम नर ऊन कतर लेते,
वस्त्र ऊनी व गेंद बनते।

गेंद के रंग का अध्ययन—एक बक्स में, जिसके ढक्कन को खिसक कर खोल सकते हैं, गेंद एक क्रम से रख दिये जाते हैं। अध्यापक ढक्कन को खिसकाता है। पहले लाल गेंद बालक देखता है। अध्यापक, तब प्रश्न करता है?

प्रश्नोत्तर—(१) यह किस रंग का है? (लाल)

(२) लाल रंग की कौन चीजें देखी हैं। (आग, कुरता, गुलाब)

(३) मैं एक दिन संध्या घूमने निकला, आकाश में एक लाल रंग का बड़ा गेंद देखा यह क्या था? (सूर्य)

इसी प्रकार प्रत्येक रंग के गेंद के लिए प्रश्न तैयार करके पूछे जाते हैं।

गीत—रंगों पर एक गीत बना होता है—

गेंद कुछ लाल, गेंद नीले,
दिखाऊँ तुम्हें गेंद पीले।
नरंगी तथा बैंजनी भी,
दिखाऊँ हरा गेंद मैं अभी।

गेंद की गति—अध्यापक गेंद को डोरी में लटकाकर बालकों को दिखाता है। फिर उसे फर्श पर लुढ़का देता है ! और प्रश्न करता है:—

गेंद फर्श पर लुढ़क सकता है, क्यों ? (गोल है)

और कौन चीजें इसी तरह लुढ़क सकती हैं ? (संतरा, गोली)

गेंद के खेल—एक कतार में या घेरे में डोरी में लटकाये हुए गेंद लेकर बालक खड़े हो जाते हैं और उन्हें भिन्न भिन्न तरीकों से घुमाते हैं। घुमाने के आदेश गीत द्वारा दिये जाते हैं, जैसे—

लटकते, हिलते, इधर-उधर,
कभी आगे, पीछे तड़पड़।
उछलता गेंद अहा कैसा,
हर्ष से नाचे शिशु जैसा।
घूमता रज्जु (डोर) गले में मेल,
अहा यह कैसा अच्छा खेल।
बनाता छोटे और बड़े,
अरे घेरे, घेरे, घेरे।
नाच कर मेरे चारों ओर,
बनाता वृत्त अरे (गोले) बेजोड़।
उछलता रोक सकूँ मैं गेंद,
न गिरना पृथ्वी पर ए गेंद।

गेंद की स्थिति—अध्यापक गेंद को कभी मेज पर, कभी कुर्सी पर, कभी हाथ में, कभी खिड़की में तथा अन्य भिन्न भिन्न स्थानों पर रखता है और प्रश्न करता है।

(१) गेंद कहाँ है ? फर्श पर

(२) अब कहाँ है ? हाथ में आदि।

गेंद की अनेक स्थितियां से संबंधित गीत तैयार करके सुनाया जाता है।

गेंद के बक्स—बालकों को यह दिखा कर इसके विषय चतुर्भुज आकार का अध्ययन करते हैं। प्रश्न पूछते हैं—

(१) यह किस चीज का बना है ? (लकड़ी का)
(२) लकड़ी कहाँ मिलती है ? (पेड़ से)
(३) लकड़ी से और कौन चीजें बनती हैं ? (कुर्सी, मेज़, दरवाजे)
(४) यह कैसे खुलता है ? (खिसकाने से)

बक्से पर भी गीत बनाकर सुनाते हैं।

कल्पनात्मक लोरी गीत—(Lullaby Song) बालकों को समझाते हैं कि मान लो गेंद एक चिड़िया है और तुम्हारी गोद घोंसला, हाथ रख कर उसे सुलाओ और गाओ।

नीड़ में निज चिड़िया रानी
सुरक्षित लेटी मन मानी।
तुम्हें चिड़िया हम करें प्रणाम,
तुम्हें सुखमय होवे तव धाम।

अन्य खेल—बालक दो कतारों में दो फीट की दूरी पर आमने-सामने मुँह करके खड़े होते हैं। उन्हें गेंद पकड़ने के भिन्न-भिन्न ढंग बताये जाते हैं। फिर उन्हें आदेश देकर खेल खिलाये जाते हैं।

दूसरा उपहार—इसके द्वारा बालकों को दूसरे उपहारों का साधारण परिचय प्राप्त होता है, क्योंकि अन्य उपहार इसी के रूपान्तर मात्र हैं। बच्चे इनकी आकृति, गति, तथा गुणों का अध्ययन करते हैं।

प्रयोग—उपहार के बक्स का अध्ययन—ठीक उसी तरह होवे जैसे पहले उपहार में बताया गया है।

(१) लड़की के गोल से प्रथम उपहार के ऊनवाले गेंद की तुलना—प्रश्नोत्तर द्वारा यह तुलना की जाती है और बाद में एक गीत सुनाया जाता है।

(२) गोल और लम्बगोल की तुलना—प्रश्नोत्तर द्वारा

(३) गोल और घन की तुलना—प्रश्नोत्तर द्वारा

तुलना का भाव—पहले इन्हें डोरी में लटका कर बालकों को दिखाया जाता है। वे इनकी आकृतियों का सूक्ष्म अध्ययन करते हैं। प्रश्नों द्वारा अंतर पूछा जाता है। हर-एक तुलना के बाद गीत गाये जाते हैं—

अन्य अभ्यास—घुमाकर और नचा कर दिखाते हैं और प्रश्न करते हैं। अंत में बालकों की आँखें बन्द करके स्पर्श द्वारा गोल, लम्ब, लम्बगोल को पहचाने का अभ्यास कराते हैं, उस समय गीत गाते हैं—

करो आँखों को कस कर बन्द
ठीक है—अब हो तुम स्वच्छन्द।
खड़े जैसे हो तुम सब साथ,
पकड़ लो तुम अपना ही हाथ।
ध्यान पूर्वक ही बच्चों! रह
बताओ तो तुम क्या है यह ?
बताओ दो इसका सच्चा नाम ?
खेल में यही तुम्हारा काम।

तीसरा उपहार—इसके द्वारा बालकों को यह सिखाया जाता है कि कैसे छोटी-छोटी इकाइयों (units) से मिलकर एक वस्तु बनती है। इससे बालकों की चिंतनशक्ति बढ़ती है। उन्हें प्रत्येक वस्तु के बनने और बिगड़ने का कारण सोचने की आदत पड़ जाती है। दूसरे, रचना करने, आविष्कार करने का अवसर मिलता है। वे काल्पनाशक्ति से काम लेकर अपने नयी चीजें तैयार करने में निपुण हो जाते हैं।

प्रयोग—(१) प्रश्नों द्वारा दूसरे और तीसरे उपहार की तुलना और गीत।

(२) बक्स खोलने का अभ्यास।

(३) घन का *अध्ययन*—प्रश्नोत्तरों द्वारा बालकों को बताया जाता

है कि घन कैसे बना है। फिर छोटे-छोटे घनों से कैसे वह बन सकता है, यह दिखाया जाता है। छोटे घनों की सहायता से मकान, दीवार, चिकनी सड़क, कुर्सी, क़िला आदि लगभग १६ वस्तुएँ बना कर दिखाई जाती हैं। बालक उन्हें बनाते हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सभी छोटे घन किसी भी वस्तु के बनाने में प्रयुक्त हो जायँ। बालकों को अपनी भूल सुधारने का मौक़ा देना उचित हैं।

क़िला या घर बनाते समय अध्यापक कहानी बनाकर सुना सकता है ताकि किले से सम्बन्धित शब्दों का ज्ञान बालक प्राप्त करलें। एक गीत भी इस मौके पर बालकों को सुनाया जाता है।

(४) *सौन्दर्यानुभूति कराना*—छोटे-छोटे घनों को अनेक प्रकार से रख कर असंख्य डिज़ायन तैयार हो सकते हैं। अध्यापक उनकी रचना करते हैं; बालक देखते हैं और बाद में उसका अनुकरण करते हैं।

(५) *संख्या का ज्ञान*—छोटे-छोटे घनों की सहायता से बालकों को संख्या का ज्ञान कराया जाता है। यहाँ भी प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग होता है। अध्यापक कहता है—

घन को दो बराबर टुकड़ों में बाँटो।
हर टुकड़े में कितने छोटे घन हैं ? आदि।

चौथा उपहार—यह उपहार बालकों को बहुत अच्छा लगता है। इसकी सहायता से उन्हें खोज करने तथा रचनात्मक काम करने का अभ्यास होता है।

प्रयोग—(१) प्रश्नों द्वारा तीसरे उपहार से तुलना।

यह क्या है ?
इसमें और तीसरे उपहार में क्या फर्क है ?

विषम चतुर्भुज आकार के छोटे टुकड़ों की सहायता से (जिनसे मिलकर यह बड़ा घन बनता है) अनेक वस्तुएँ जैसे, कुर्सी, सिंहासन

नालियों, फाटक, झरोखे आदि बनाकर दिखाये जाते हैं तथा अनेक प्रकार के डिजायन बना कर कलात्मक रुचि बालकों में उत्पन्न की जाती है।

पाँचवा उपहार—यह तीसरे उपहार का अधिक विस्तृत तथा जटिल रूप है। उद्देश्य इसका बिल्कुल वही है जो तीसरे का है किन्तु यह अधिक विकसित बुद्धि के बालकों के लिए उपयुक्त है।

प्रयोग—(१) तीसरे उपहार से तुलना (प्रश्नों द्वारा)।

(२) इस उपहार के छोटे घनों तथा टुकड़ों की सहायता से अनेक प्रकार की इमारतें बनाना, विशेष रूप से चर्च, मन्दिर, मिल और झोपड़ी आदि। इसके अतिरिक्त अन्य चीजें जैसे कुर्सी, सोफे, जीने की सीढ़ियाँ।

(३) डिजायनों का बनाना जो अधिक सुन्दर तथा कठिन होते हैं।

(४) ज्योमिति की शक्लों का ज्ञान कराना—इसमें आधे तथा चौथाई घनों की सहायता से सब प्रकार के त्रिभुजों, कर्णों और चतुर्भुजों का ज्ञान आसानी से हो जाता है। बालक उन्हें देखकर उनके नाम याद कर लेते हैं। अध्यापक प्रत्येक शक्ल के बारे में प्रश्न भी करता है।

छटाउपहार—यह चौथे उपहार का विस्तृत तथा जटिल रूप है। अतः दोनों के उद्देश्य समान हैं।

प्रयोग—(१) चौथे उपाहार से प्रश्नोत्तर-विधि से तुलना।

(२) इसके विषम चतुर्भुज आकार के टुकड़ों से, स्टाल, मकान, स्कूल, खेल का मैदान, खेत और अनेक डिजायनों के खम्भे आदि बनाकर दिखाये जाते हैं। बनाते समय गीतों का प्रयोग होता है।

(३) डिजायनों का पहले की तरह तैयार करना।

सातवाँ उपहार—यह उपहार बालकों को मूर्त (Concrete) से अमूर्त (Abstract) की ओर ले जाने का साधन है। अभी तक बच्चे मूर्त वस्तुओं के बारे में समझ सके हैं। अब इस उपहार द्वारा वे उनके

स्मृति-चित्र (Memory Images) को प्रत्यक्ष चित्र के रूप में खींचना सीखते हैं।

प्रयोग—ज्योमिति की शक्लों, जैसे वर्ग, विषम चतुर्भुज, समकोण समत्रिबाहु त्रिभुज आदि का परिचय कराना। बक्स का जिसमें यह बन्द रहते हैं, खोलते हुये, एक गीत गाया जाता है। जिसमें उनके नाम गिनाये जाते हैं। फिर हर एक के बारे में अध्यापक प्रश्न करता जाता है, बालक उत्तर देते हैं। इस तरह उन्हें प्रत्येक शक्ल का पूरा ज्ञान हो जाता है।

अन्यउपकरणों (उपहारों) द्वारा शिक्षण

(१) *जुड़ी हुई पटरियाँ*—एक लम्बाई की नौ पटरियों को जोड़ कर एक गज लम्बाई में बना लेते हैं। इसके जोड़ घुमावदार होने से, इन्हें जैसा चाहें मोड़ सकते हैं। इसकी सहायता से सब प्रकार के कोण, (न्यून कोण, समकोण, अधिक कोण) सब प्रकार के त्रिभुजों, चतुर्भुजों तथा बहुभुजों का ज्ञान कराया जाता है। अध्यापक उन पटरियों को जोड़ पर से मोड़कर इन विभिन्न आकृतियों में रखना बता देता है, फिर बालकों से आदेश देता है और बालक उन पटरियों से वही आकृति बना कर तैयार करते हैं।

(२) *बिना जुड़ी पटरियाँ*—जुड़ी हुई पटरियों की अपेक्षा इन्हें प्रयोग करने में अधिक स्वतन्त्रता रहती है। इनकी सहायता से समानांतर रेखाओं, रेल की पटरियों तथा अनेक प्रकार के डिजायनों का ज्ञान कराया जाता है।

छड़ियों का रखना—पहले अध्यापक इनके विषय में प्रश्नोत्तर-विधि द्वारा बालकों से बातचीत करता है, या कोई कहानी सुना सकता है। इनके सहारे पेड़-पौधों, वनस्पति का भी ज्ञान बढ़ता है। अंगरेजी की पढ़ाई में इनका अधिक महत्व है क्योंकि इनकी सहायता से गर फंदे

वाले अक्षर जैसे A, E, F, H, I, K, L, M, N, T, V, W, Y, X, Z, का ज्ञान बड़ी आसानी से बालक प्राप्त कर लेते हैं। इन छड़ियों को इन अक्षरों की तरह मिलाकर रखने से अक्षर-ज्ञान आसान हो जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक वस्तुओं के चित्र जैसे, झण्डा, हैट, घर, लिफाफा, लैंप, संदूक, आदि भी बनाकर दिखाये जाते हैं। इनका प्रयोग ज्यामिति में होता है।

छल्लों का प्रयोग—पहले प्रश्नोत्तर द्वारा अध्यापक बालकों को छल्ले (Ring) से परिचय कराता है और उसकी तुलना अँगूठी, पैसे, रुपये से कराते हुए, उनकी समानता और विभिन्नता दिखलाता है। फिर छल्ले के सहारे लोहे की धातु पर एक सुन्दर पाठ पढ़ाया जाता है। किस प्रकार लोहा खानों से निकाल कर तपाने के बाद काम में आने लायक बनाया जाता है और फिर कैसे उससे अनेक प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ बनाई जाती हैं। आदि बड़े मनोरंजक रूप में बालकों को बताया जाता है। इन छल्लों की सहायता से अनेक प्रकार के डिज़ायन भी लड़के बनाते हैं।

डोर के अभ्यास—सूत की डोर का फ्रोबेल की विधि में काफी महत्व है। बालक स्वभाव से डोर के शौकीन होते हैं। वे प्रायः अपनी जेब में डोर की गुड्डी रखते हैं। अनेक प्रकार के रंगों के डोरों का प्रयोग किया जाता है। लकड़ी की पटरियाँ और छल्ले मन चाहे ढंग से मोड़े नहीं जा सकते परन्तु डोरे को जैसे चाहें मोड़ सकते हैं, इसलिए डोरे से बहुत काम निकलता है। पहले लड़के डोरे में अनेक प्रकार की गाँठें बाँधना सीखते हैं। फिर उन्हें डोर की उत्पत्ति पर एक पाठ पढ़ाया जाता है। इस पाठ में, कपास, रुई, धुनना, कातना, बीनना, बुनना आदि सभी विषय प्रसंग में आ जाते हैं। पाठ वार्तालाप-विधि (Conversation Method) से पढ़ाया जाता है। फिर डोरे से विविध प्रकार की आकृतियाँ बनाकर दिखाई जाती हैं, जैसे, फूल, गिलास, पंखा, हैट, वृत्त, चम्मच आदि। डोरे से अक्षर-ज्ञान में भी सहायता मिलती है।

ड्राइंग का अभ्यास—ड्राइंग का किंडरगार्टेन विधि में प्रमुख स्थान है। इसके दो कारण हैं। एक, ड्राइंग का जीवन में हर समय आवश्यकता पड़ती है। कोई भी ऐसा व्यवसाय नहीं है जहाँ पहले योजना बनाते समय नक्शे की जरूरत न पड़ती हो। उद्यम और उद्योग (Industry) में मशीन के चित्र आवश्यक होते हैं। दूसरे, इसके द्वारा बालक की अनुकरण और रचनात्मक प्रवृत्तियों की संतुष्टि होती है। बालक का यह स्वभाव होता है कि वह जो वस्तु या दृश्य देखता है, उसका वैसा ही चित्र खींचना पसंद करता है। कल्पना को साकार रूप देने में भी चित्रांकन से सहायता मिलती है। चित्रांकन के महत्व का सबसे उत्तम प्रमाण चीन और मिश्र की भाषायें हैं जहाँ की भाषा लिपि में रेखा-प्रतीकों (Line Symbols) के स्थान पर चित्रों का प्रयोग होता है। ग्राफ की तरह स्लेट पर बने खानों पर बालक, सीधी, टेढ़ी तथा झुकी हुई रेखायें खींचने का अभ्यास करते हैं। फिर इन रेखाओं की सहायता से अनेक सुन्दर डिजाइन बनाना बताया जाता है। धीरे-धीरे इस प्रकार के डिजाइन बालक ग्राफ पेपर पर बनाना सीख लेते हैं। फिर उनमें रंग भरने की कला भी उन्हें बताई जाती है।

दस्तकारी की शिक्षा—हाथ से किये काम बालकों को अच्छी तरह याद रहते हैं। इसलिए किंडरगार्टेन विधि में दस्तकारी सिखाने का पूरा प्रबन्ध है। शीशे के मोतियों के दाने, पानी में भिजोये हुए मटर के दाने इस काम में लाये जाते हैं। मोतियों के दाने कपड़े या मखमल पर बने डिजाइनों पर टाँकने से बड़े सुन्दर चित्र बन जाते हैं। मटर के भीगे दानों में लकड़ी की पतली सलाखें पिरो कर घर, खाट और मन्दिर आदि के मॉडेल तैयार किया जाते हैं। इनके बनाने में 'गीतों' का प्रयोग उसी तरह होता है, जैसे उपहारों द्वारा पढ़ाई में। कागज में पिन से छेद करके भी डिजाइनें बनाई जाती है। कागज के प्रयोग में कागज के उद्योग का पाठ पढ़ाया जाता है। कसीदे की कढ़ाई (Embr-oibary) इस शिक्षा का मुख्य अंग है। ऊन के कपड़े पर नकली चाँदी

सोने के तारों से डिजाइन काटे जाते हैं। चटाई बिनने, बेंत से डलिया बिनने और कागज के खिलौने बनाने का अभ्यास करने में वालकों को बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। वे रंगीन कागज को मोड़कर फूल, नाव, टोपी, चिड़िया के मॉडेल तैयार करके रख देते हैं।

पाठ्यक्रम के अन्य विषयों की पढ़ाई

(१) *नैतिक और धार्मिक शिक्षा*—किंडरगार्टेन शिक्षा का प्रधान उद्देश्य ईश्वरीय सत्ता का बोध बालकों को कराना है क्योंकि उसी में 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का वास है। बालकों को उसका बोध 'पिता' के रूप में कराया जाता है। जिस प्रकार गड़ेरिया भेड़ों की देख-रेख करता है, उसी तरह परमपिता परमेश्वर हम सबका पालन करता है, यह भाव उत्पन्न किया जाता है। 'ईश्वर के दंड' का आभास तक नहीं होने दिया जाता। बालकों से यह नहीं कहते कि बुरा कार्य करने पर ईश्वर दंड देता है। इससे उसकी निष्ठुरता का आभास होता है। प्रायः यही कहते हैं कि बुरा कार्य इसलिए करना अनुचित है कि उससे ईश्वर, जो इतना दयालु है, अप्रसन्न होता है।

प्रातःकालीन प्रार्थना का जिक्र हम पहले 'दैनिक कार्यक्रम' के अन्तर्गत कर चुके हैं। प्रार्थना के बाद प्रश्नोत्तर-विधि द्वारा बालकों से ईश्वर की दयालता का दिग्दर्शन कराया जाता है। उदाहरण के लिए—"सूर्य कितना प्रकाशवान है, इसे किसने बनाया ?" या "चिड़ियाँ क्यों गाना गाती हैं ?" आदि इस प्रकार के प्रश्न किये जाते हैं। इसी तरह दया, ईमानदारी, सत्यवचन आदि नैतिक गुणों के पाठ पढ़ाये जाते हैं। प्रत्यक्ष उदाहरणों के प्रयोग से यह दुर्बोध विषय उनकी समझ में आजाते हैं। जैसे—"मैं एक दिन स्टेशन पर टिकट खरीद रहा था। भीड़ थी, उसी समय एक लड़का घुसकर धक्का देने लगा। मैं गिर पड़ा। मेरी ट्रेन छूट गई।" यह कैसा लड़का था ? इस तरह के प्रश्न से व्यवहार की अच्छाई बुराई का ज्ञान हो जाता है।

पढ़ने की शिक्षा—फ्रोबेल की विधि में, पढ़ने की शिक्षाका असली व्यवस्था सात वर्ष की आयु के बाद ही की जाती है परन्तु प्रायः पढ़ने का अभ्यास इस आयु के पूर्व ही होने लगता है । पटरियों, डोरे और छड़ियों की सहायता से अक्षर-ज्ञान पहले से हो जाता है, परन्तु यह सब एक तरह से खेल ही खेल में आ जाता है । इसके बाद शब्द-ज्ञान का नम्बर आता है । अलग-अलग अक्षर तोड़-तोड़ कर बताने की अपेक्षा समूचे शब्द का स्वर (Loud reading) पाठ द्वारा बताते हैं । 'शब्दों' को याद कराने में छोटी-छोटी कहानियों से काम लिया जाता है । इसे नाटकीय विधि कहते हैं । सब बच्चे खेलते हैं । कोई उस कहानी का एक पात्र बनता है कोई दूसरा । इस तरह खेल द्वारा शब्द याद हो जाते हैं । सम्पूर्ण वर्णमाला को याद कराने के लिए एक कविता कण्ठस्थ करा दी जाती है जिसकी हर एक लाइन का आरम्भ वर्णमाला के एक अक्षर से होता है । पढ़ाई का पाठ एक अन्य विधि द्वारा जिसमें सात पद हैं, दिया जाता है । अध्यापक एक तस्वीर दिखाता है । बालकों की उत्सुकता बढ़ती है । दूसरे पद में अध्यापक इस तस्वीर के बारे में कहानी सुनाता है । तीसरे पद में वह बालकों को कहानी में आये हुए नये शब्द सिखाता है । वे शब्द स्यामपट पर लिख दिये जाते हैं । चौथे पद में शब्दों को अच्छी तरह सीख लिया जाता है । (प्रारंभ में ऊपर बताई गई विधि द्वारा) पाँचवें पद में अध्यापक शुद्ध पाठ का नमूना स्वयं पढ़कर देता है । अब छठे पद में बालक बिना अध्यापक की सहायता के पढ़कर सुनाते हैं । हाँ, अध्यापक कक्षा में बालकों के सामने खड़ा रहता है और भूलों को ठीक करता जाता है । सातों पद में प्रत्येक बालक पर ध्यान देते हुए पढ़ने का अभ्यास कराते हैं । सहानुभूति और प्यार से बालक की भूल सुधार दी जाती है । बालकों में अधिक से अधिक पढ़ने की रुचि जाग्रत करने के लिए कुछ ऐसी पुस्तकों का प्रबन्ध किया जाता है जिसमें मनोरंजक कहानियाँ लिखी होती हैं । जिनके विषय 'जहाज' 'मोटर', वायुयान आदि होते हैं ।

लिखने का ज्ञान—लिखने के संबंध में फ्रोबेल का विचार है कि यदि बालक ने अक्षर को ध्यान से देखा है तो वह उसका स्मृति-चित्र (Memory Imoge) मन में धारण करके उसके सहारे अक्षर लिख सकता है। फिर अक्षर बनता कैसे है, इसका ज्ञान बालक को कराया जाता है। अक्षर में खड़ी लाइनें, पड़ी लाइनें, तथा फंदे होते हैं। अतः पहले 'खेल' द्वारा छोटी लकड़ियों के सहारे इन लाइनों और फंदों का अभ्यास कराया जाता है। लकड़ियों को 'फौज के सिपाही' के रूप में मानकर उन्हें ड्रिल की तरह खड़ा होना, घूमना और लेटना आदि की स्थिति में रखना बताते हैं। फिर 'कलम' का घुमाने के अभ्यास कराये जाते हैं। अँगूठे और उँगलियों से कलम या पेंसिल पकड़ना, कलाई घुमाना भी बताया जाता है। इन सबके लिए आदेश नियत हैं। अक्षर को सुन्दर सीधे तथा धीरे से लिखना बताया जाता है।

संख्या का ज्ञान—'उपहारों द्वारा शिक्षा' के अन्तर्गत हम बता चुके हैं कि प्रारंभ से ही बालकों को संख्या का बोध बहुत कुछ हो जाता है। आगे चलकर 'खेल' और 'कहानी' की सहायता से अंकगणित के प्रारम्भिक नियम जैसे—जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि की शिक्षा दी जाती है। जैसे—अध्यापक कहता है—"मैं अपने मित्र के साथ उसके गाँव गया। उसके दरवाजे पर एक भैंस बँधी थी। दो बैल चारा खा रहे थे। इतने में तीन बकरियाँ आगयीं। अच्छा, अब बताओ मेरे मित्र के पास कितने जानवर थे?" आदि। खेल में ठोस वस्तुओं। (जैसे—खिलौने, सीप, घोंघे) का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त १० से ऊपर की संख्या का बोध लकड़ी के गोल टुकड़ों में बने असंख्यक छेदों द्वारा कराते हैं।

आकृति तथा रंग का ज्ञान—इस संबंध में बहुत-कुछ 'उपहारों' के प्रसंग में बताया जा चुका है! बालकों को उपहारों की सहायता से ज्यामिति की विभिन्न शक्लों का पूरा परिचय मिल जाता है। जहाँ तक

रंगों और उनके (gradations) हल्कापन तथा गहरेपन का प्रश्न है, प्रकृति-पर्यवेक्षण द्वारा उनका ज्ञान कराते हैं, फूलों से इस पढ़ाई में विशेष सहायता मिलती है। यहाँ भी कहानियाँ तथा खेल काम में लाये जाते हैं।

प्रकृति-विज्ञान (Natural History) *की पढ़ाई*—किंडरगार्टेन में 'पौधों', 'पक्षियों और 'पशुओं' से बालक का सम्बन्ध हर समय रहता है। वे इनमें रुचि ही नहीं लेते वरन् उनसे प्रेम भी करते हैं। यही उनके भावी वैज्ञानिक अध्ययन की नींव है। उनके साथ खेलने तथा रहने से उनके अंग-प्रत्यंग का निरीक्षण करने से उनका ज्ञान ठोस हो जाता है। अब आगे चल कर वस्तु-पाठ (Object Lessons) द्वारा पढ़ाई होती है। उदाहरण के लिए, 'गाय' को लेकर अध्यापक बालकों को उसके सारे अंगों का निरीक्षण कराता है। कभी-कभी स्लाइडों और लालटेन द्वारा बड़े पशुओं के चित्र परदे पर दिखाये जाते हैं। छोटे-छोटे पशु जैसे चूहे, खरगोश, गिलहरी आदि जालीदार बक्सों में पाल कर रक्खे जाते हैं। वस्तु-पाठ (Object Lessons) और चित्र-पाठ (Picture Lesson) द्वारा पढ़ाई होती है।

कहानियाँ—अनुभव बताता है कि बालक को कहानियाँ सुनने में बड़ा आनन्द आता है। संध्या होते ही वे बूढ़े बाबा या दादी को कहानियाँ सुनाने के लिए तंग करने लगते हैं। फ्रोबेल ने कहानियों का प्रयोग पढ़ाई में कई कारणों से किया है। एक तो इससे बालकों का भाषा-ज्ञान बढ़ता है, दूसरे, बालकों को पात्रों से सहानुभूति पैदा हो जाती है। इससे उनमें मानवीय-गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इसके द्वारा कल्पना-शक्ति भी बढ़ती है। सबसे अधिक लाभ यह है कि बालकों में नैतिक गुण उत्पन्न होते हैं। आज्ञापालन, सहनशीलता, सत्य बोलना आदि के गुण कहानियों द्वारा आसानी से सिखाये जा सकते हैं। कहानियाँ कई तरह की होती हैं। ऐतिहासिक, कल्पनात्मक तथा प्रकृति की कहानियाँ। ऐति-

हासिक कहानियों द्वारा यथार्थ का अनुभव कराते हैं। कल्पनात्मक कहानियाँ छोटे बच्चे अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि उनमें देव-परी का वर्णन रोमांचकारी होता है। पेड़, पौधे, पहाड़ और नदियों की कहानियों से उनका ज्ञान भी बढ़ता है और प्रकृति के प्रति प्रेम जाग्रत होता है। कहानियों को कहते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कहानी में वास्तविकता का हनन न हो। रोचक ढंग से सुनाना और जहाँ आवश्यक हो अभिनय से काम लेना चाहिए। स्वर स्पष्ट हो, भाषा सरल तथा सुबोध होना ठीक है। अध्यापक कहानी इस तरह सुनाये कि बालक समझे कि उसे भी पात्रों के सुख से सुख और दुख से दुख का अनुभव हो रहा है। जो बातें समझ में यों कहने से न आ सकें, उनका चित्र या माडेल भी दिखा देना उचित है।

कविता-पाठ—तुकांत पद्य में लिखी हुई कहानियाँ इसके लिये काम में लाई जाती हैं। वे सरल पर प्रवाहपूर्ण भाषा में लिखी होती हैं। अध्यापक उन्हें सस्वर पढ़ कर सुनाता है। शब्दों के शुद्ध उच्चारण पर ध्यान रक्खा जाता है।। बालक अध्यापक का अनुकरण करते हैं। कुछ शब्दों पर विशेष जोर देते हैं। उन शब्दों पर ध्यान दिलाने के लिए कुछ प्रश्न बीच में पूछ लिये जाते हैं।

संगीत की शिक्षा—मेरिया माँटेसरी की तरह फ्रोबेल का भी विचार है कि संगीत बालक की शिक्षा का प्रमुख अंग है। किंडरगार्टेन में संगीत की शिक्षा कई भागों में विभक्त है।

(अ) **संगीत के खेल**—बच्चे 'पशुओं' का पार्ट लेकर खेलते हैं और गाते हैं। कभी-कभी समूहगान (Chorus) भी होते हैं। गाते समय वे भिन्न-भिन्न अंगों का संचालन करते हैं जैसे हाथ मिलाकर नाचना, झुकझुक कर चलना, पर यह अंग संचालन ताल और लय के साथ होता है। उदाहरण के लिये वन-गीत (Jungle song) उल्लेखनीय है। समूह गान आरम्भ होता है। एक बालक भेड़िये का अभिनय करता

हुआ मानो माँद से निकलता है और ताल और लय के साथ चलता है। दूसरा लड़का शिकारी बन कर उसका पीछा करता है और उसे पकड़ता है। इसी तरह के अनेक गीत होते हैं। इनसे बालकों के कान भिन्न भिन्न ध्वनियों को पहचानने में अभ्यस्त हो जा हैं।

(ब) **क्रिया-गीत**—(Action songs) इन गीतों में अंग-संचालन प्रधान होता है। वास्तव में यह भविष्य में ड्रिल की तैयारी है। गान आरंभ होते ही, हाथ जोड़ना, अलग करना, हाथ ऊपर उठाना, ताली बजाना, हाथ को छाती से लगाना आदि क्रियायें बालक करते हैं। इसी तरह दूसरे गान में पैरों के अभ्यास होते हैं जैसे तेज चलना, धीरे से चलना, घूमना, पैर जोड़ कर खड़े होना आदि।

(स) **अभिमान गीत**—(Marching songs) अंगों को सीधा किये हुये स्थिर भाव से संगीत की लय के साथ अभिनय करना बताया जाता है। कदम मिला कर धीरे-धीरे चलना, या तेजी से चलना, हाथ हिलाते हुये या हाथ बाँध कर चलना, यह सब सिखाते हैं।

इनके अतिरिक्त संगीत की शिक्षा में घुनघुनों का प्रयोग होता है। छः इंच की लकड़ी के दो सिरों पर दो गोल लोहे के गेंद-से लगे होते हैं। इन्हें घुनघुना कहते हैं। इन्हें विभिन्न ढंग से हिला कर मधुर स्वर उत्पन्न किए जा सकते हैं। अतः बालकों को इन्हें कई तरह से हिलाना बताया जाता है। इनके पचासों अभ्यास नियत हैं। किंडरगार्टेन में इनका प्रयोग होता है।

कसरत—बच्चों का स्वास्थ्य सुधारने, उन्हें फुर्तीला बनाने, साथ ही उनका मनोरंजन करने के उद्देश्य से अनेक प्रकार की कसरतें बालकों को कराई जाती हैं। लकड़ी के गोल रिंग जिनपर रेशमी कपड़ा लपेटा रहता है, छड़ी, तिकोनी पट्टी, लकड़ी की बंदूकें, पंखे आदि की सहायता से लड़के ढंग ढंग की कसरत करते हैं। इन कसरतों के लिए संकेत बँधे हुये हैं। अध्यापक उन संकेतों को आदेशों द्वारा प्रकट करता है और बच्चे इसी

के अनुसार कसरत करते हैं। इनका पूरा विवरण जानने के लिये किंडरगार्टेन की पुस्तकें पढ़ना आवश्यक है।

किंडरगार्टेन-विधि की आलोचना

किंडरगार्टेन विधि के सम्बन्ध में शिक्षाशास्त्रियों का मत यह है कि यह विधि व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि इसमें निर्धारित शिक्षाक्रम इतना लंबा है कि उसे आसानी से पूरा नहीं किया जा सकता। इसलिए इसे मूल रूप में अपनाना ठीक नहीं। देश और काल की परिस्थिति के अनुरूप, इस विधि का रूपांतर करके इसे प्रयोग में ला सकते हैं। फ्रोबेल के उपहारों में कोई हेर-फेर करना संभव नहीं है क्योंकि उसने जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर, उनका आयोजन किया है, उसमें तनिक भी परिवर्तन से इस विधि का आकर्षण ही समाप्त हो जायगा, परन्तु खेलों और दस्तकारी की शिक्षा में घटाने-बढ़ाने की पूरी गुंजाइश है। अपने समय में ही फ्रोबेल ने अपनी विधि की लोकप्रियता देखी। उसी ढंग के कई स्कूल भी स्थापित हो गये, परन्तु अपने अंतिम समय में, फ्रोबेल ने देखा कि उसकी देश की सरकार, इस विधि का विरोध कर रही है। जर्मन सरकार ने इस विधि के क्रान्तिकारी रूप को देख कर इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उधर देशों ने इसे अपनाना आरम्भ कर दिया और आज प्रत्येक देश में इसका उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है।

गुण

(१) पारिवारिक वातावरण—किंडरगार्टेन में सारे बालक एक परिवार की भाँति रहते हैं। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप, बड़ी तेजी से परिवार का विघटन होता जा रहा है। पहले कुटुम्ब का भरण-पोषण आसानी से हो जाता था। पुरुष वर्ग काम करता था और स्त्रियाँ घर में रह कर गृहस्थी चलातीं और बच्चों की देख-भाल करती थीं। आज वह युग आ गया है, जब माता-पिता दोनों कारखानों, खेतों या खानों में काम

करने के लिए निकल जाते हैं। बच्चों की देख-भाल करने वाला कोई नहीं रह जाता और वे बिगड़ जाते हैं। इस कमी को किंडरगार्टेन पूरा करता है। अध्यापिका से बालकों को मातृ-स्नेह प्राप्त होता है। वे यहाँ रह कर अच्छी आदतें सीखते हैं और अच्छे नागरिक बनते हैं।

(२) व्यावसायिक महत्व—किंडरगार्टेन में दस्तकारी की शिक्षायें भी हैं। कागज, लकड़ी, कढ़ाई, बुनाई, और सिलाई के काम यहाँ बालक सीख लेता है। भविष्य में इनसे उसे बड़ा लाभ पहुँचता है। फ्रोबेल से पूर्व रूसो ने शिक्षा के व्यावसायिक महत्व पर प्रकाश डाला था। 'एमील' को शिक्षा में उसने दस्तकारी का विशेष ध्यान रक्खा था परन्तु दस्तकारी की शिक्षा, उसने केवल आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से आवश्यक बताई थी। उसके बाद पेस्तालाजी ने दस्तकारी पर इसलिए जोर दिया था कि बालक हाथ से काम करके बहुत-सी नई बातें सीख सकते हैं, परन्तु फ्रोबेल ने व्यावसायिकशिक्षा का महत्व एक नये ढंग से बताया। उसका मत है कि व्यावसायिक शिक्षा से बालकों की रचनात्मक शक्ति का विकास होता है। इन दस्तकारी के कामों द्वारा, बालकों की आंतरिक्त शक्ति बहिर्मुखी होकर रचनात्मक कार्यों में संलग्न हो जाती है।

दस्तकारी के कामों से एक लाभ और होता है। बालकों को अपनी व्यावसायिक रुचि का अंदाजा हो जाता है। अध्यापक उन्हें काम कराते हुए उनकी भावी सफलता या असफलता का अनुमान लगा देता है और उसी के आधार पर उन्हें शैक्षिक और व्यावसायिक सलाह दे सकता है। आर्थिक दृष्टि से इन कामों का महत्व है ही। बालक इस योग्य हो जाते हैं कि वे अपने पेट की समस्या स्वयं हल कर सकें।

(३) बालकों के व्यक्तित्व का अध्ययन—किंडरगार्टेन में अनेक प्रकार के काम (activities) होते हैं। उन्हें करते हुए बालकों के व्यवहार का अध्ययन, बड़ी सरलता से किया जा सकता है। जब

अध्यापक प्रत्यक्ष रूप से बालक के व्यक्तित्व का अध्ययन करने लगता है, तो बालक संकोच में पड़ जाता है और उसकी चित्तवृत्तियाँ स्वाभाविक ढंग से काम करना बंद कर देती हैं। इसके विपरीत जब वह खेलता होता है या किसी अन्य काम में लगा होता है, तो उसका व्यवहार स्वाभाविक रहता है। किंडर-गार्टेन में हम बालक के स्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन इसलिए कर सकते हैं कि इसमें उन्हें प्रत्येक प्रकार के काम करने की सुविधा रहती है।

(४) *बालक की प्रवृत्तियों की संतुष्टि*—इस विधि द्वारा पढ़ाई में बालक की रचनात्मक, कल्पनात्मक और सौंदर्यानुभूति आदि शक्तियों का उपयोग होता है। कहानियों, खेलों और अभिनयों में बालक काल्पत जीवन (make bele've) का आनन्द लेते हैं। वे कभी अपने को पशु, कभी राजा, कभी वृक्ष और मान कर उनके कार्यों का स्वयं आनंद लेते हैं। बालकों की यह प्रवृत्ति शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। किंडर-गार्टेन में इसकी संतुष्टि होती है।

(५) *प्रकृति-प्रेम की उत्पत्ति*—बाग में, पशु-पक्षियों, पेड़ों और फूलों के सम्पर्क में रहकर बालक प्रकृति से प्रेम करना सीखते हैं उनकी पर्यवेक्षण शक्ति बढ़ती है। वस्तु-पाठ द्वारा वे एक वैज्ञानिक की भाँति हर वस्तु का सूक्ष्म अध्ययन करना सीख लेते हैं। प्रकृति-प्रेम का इससे भी आगे, एक पहलू है, वह है आध्यात्मिक पहलू। प्रकृति-प्रेम द्वारा बालक के नैतिक गुणों की अभिवृद्धि होती है। प्रकृति तो केवल ईश्वर की महान शक्ति का अनुभव करने का साधन है। ईश्वर पर विश्वास तथा श्रद्धा उत्पन्न करने का यह साधन है।

नैतिक गुणों का विकास—बालकों में आध्यात्मिकता उत्पन्न करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है क्योंकि आध्यात्मिकता से ही नैतिकता उत्पन्न होती है। किंडरगार्टेन के उत्तम वातावरण में बालकों का चरित्र बनता है। अपने कर्तव्य-पालन, सत्य बोलना, सहयोग, तथा पारस्परिक प्रेम

जैसे सात्त्विक गुण उत्पन्न हो जाते हैं। किंडरगार्टेन की पढ़ाई का सच्चा असर भावी जीवन में देखा गया है। यहाँ के पढ़े हुए बालक, सामाजिक जीवन में सुनागरिक साबित हुए हैं। आलोचक रस्क का कहना है कि किंडरगार्टेन में, सैद्धांतिक दृष्टि से भले ही कुछ दोष हों, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि छोटे बच्चों को शिक्षा के लिए नए प्रकार के स्कूलों की आवश्यकता का ध्यान फ्रोबेल ने ही दिलाया, क्योंकि चारित्रिक विकास के दृष्टिकोण से बचपन में, चरित्र की पक्की नींव डालना बहुत जरूरी है।

(७) *इन्द्रिय-शिक्षा*—आजकल हम सभी जगह इन्द्रिय-शिक्षा की चर्चा सुनते हैं। इस ओर सबसे पहिले हमारा ध्यान आकर्षित करने वाला फ्रोबेल ही था। फ्रोबेल के आधार को लेकर, उस पर मेरिया मॉंटेसरी ने अपनी शिक्षण-विधि का विकास किया तो परन्तु मेरिया ने उसे एकांगी बना दिया। फ्रोबेल की शिक्षण-विधि में इंद्रिय-शिक्षा का जितना महत्व होना चाहिए, उतना ही है। इन्द्रिय-शिक्षा द्वारा विचारोत्पत्ति (Concept formation) में सहायता मिलती है, इसीलिए फ्रोबेल ने इन्द्रिय-शिक्षा पर जोर दिया। उसने इसे कभी भी आवश्यकता से अधिक महत्व नहीं दिया।

(८) *उपहारों का मनोवैज्ञानिक महत्व*—फ्रोबेल ने उपहारों का चुनाव, मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार किया है। स्थूल वस्तुओं के सहारे सूक्ष्म विचारों को उत्पन्न करने के लिए उसने 'मूर्त से अमूर्त की ओर' (From Concrete toAbstract) वाले सिद्धांत का फ्रोबेल ने पालन किया है। इसके अतिरिक्त 'क्रिया द्वारा सीखना' (Learning by doing) तथा 'खेलों द्वारा शिक्षा' (Playway) जैसे मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश किंडरगार्टेन में हुआ है। सबसे बड़ी बात यह है कि फ्रोबेल ने पहली बार वैकासिक मनोविज्ञान (Developmental Psychology) का शिक्षा में प्रयोग किया।

इस दृष्टि से वह सच्चा मनोवैज्ञानिक था। उसने ही इस तथ्य को खोजा कि बालकों का विकास एक नियम के अनुसार होता है और उस नियम का यदि शिक्षण में प्रयोग किया जाय तो अवश्य सफलता मिलेगी। इस विधि से बालक को कल्पित-जीवन (Make beleive) का पूरा आनन्द प्राप्त होता है। गेंद को चिड़िया मानकर अपनी गोद में सुलाना बालक को बड़ा ही सुखप्रद जान पड़ता है। बच्चों का स्वभाव ही यह होता है कि वे अपने को कहानी के नायक के रूप में, घोड़े को छड़ी के रूप में, गुड्डे-गुड़ियों में भावी गृहस्थ-जीवन को देख कर, इतना तन्मय हो जाते हैं कि वे अपने को भूल जाते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति किंडरगार्टेन में संतुष्ट होती है।

दोष

सिद्धांत और उनके व्यवहार में अंतर—फ्रोबेले ने उपहारों और खेलों का तात्कालिक (Immediate)महत्व कम बताया है। उसके मत में उपहार तथा खेल की वस्तुएँ, उच्च आध्यात्मिक सिद्धांतों को व्यक्त करने के लिये प्रतीक (symbol) के रूप में चुनी गयी हैं। मजे की बात यह है कि फ्रोबेल महोदय ने न जाने कैसे यह कल्पना कर ली कि बालक खेल ही खेल में, इन उच्च आध्यात्मिक बातों को समझेगा। इस बात की कल्पना करने में वे व्यवहारिकता और बालक के मनोविज्ञान को बिल्कुल भूल गये। दूसरे उपहार के सम्बन्ध में आप यहाँ तक कह जाते हैं कि दो साल का बच्चा इसकी सहायता से प्रकृति तथा मनुष्य की वास्तविकता समझ लेता है। इसी तरह खेलों के संबंधमें आप लिखते हैं कि बालक खेल द्वारा ही उस महान एकत्व का बोध कर लेता 'जो सब जगह व्याप्त है। गेंद की चमक, गर्मी और लचकपन से वह 'महान आत्मा' की शक्ति तथा प्रकाश का अनुभव कर लेता है, आदि। बालकों के सम्बन्ध में यह सब बातें हास्यास्पद जान पड़ती हैं, क्योंकि बालक ऐसी बातें न सोचते हैं और न समझ पाते हैं। वे केवल उपहारों

से खेलने में मस्त रहते हैं। इस दृष्टि से यह विधि जिस उद्देश्य को लेकर चली है, उसमें असफल हुई है। उसकी लोकप्रियता का एकमेव कारण है, वर्तमान औद्योगिक हलचल से उत्पन्न सामाजिक स्थिति।

सिद्धांतों में विरोधाभास—फ्रोबेल के सिद्धांत युक्तियुक्त नहीं हैं और कहीं-कहीं उसका एक सिद्धांत दूसरे से टकराता है। 'विश्व में एकता' तथा 'आन्तरिक विकास क्रिया,' जैसे गूढ़ सिद्धांतों को वह स्पष्ट समझाने में असफल रहा। यही नहीं, उन्हें वह तर्कों और उदाहरणों द्वारा प्रमाण सहित प्रस्तुत न कर सका। एक ओर वह कहता है कि बालक का विकास एक आन्तरिक क्रिया द्वारा होता है और दूसरी ओर वह यह बताने में असमर्थ है कि यह क्रिया शिक्षा द्वारा कैसे प्रस्फुटित होगी। यदि बालक का ज्ञान और अनुभव इस आंतरिक क्रिया द्वारा बढ़ सकता तो फिर यह बाहरी शिक्षा का इतना बड़ा भ्रमजाल बिछाने की क्या आवश्यकता है? यदि फ्रोबेल का यह सिद्धांत मान लिया जाय तो शिक्षा-संबंधी सारा आयोजन ही व्यर्थ है। प्रोफेसर डिवी ने फ्रोबेल के इस पक्ष की बड़ी खरी आलोचना की है, क्योंकि वह सिद्धांत शिक्षा के महत्व को कम करता है।

आडंबर तथा बंधन—फ्रोबेल ने किंडर-गार्टेन द्वारा बालकों को मुक्त वातावरण प्रदान करने की चेष्टा की, जिससे वे अबाध-गति से शारीरिक और मानसिक उन्नति कर सकें। दुर्भाग्य से उसने 'उपहारों' तथा अन्य व्यापारों की योजना इस प्रकार बनायी कि इस शिक्षण-विधि में आडंबर हद से ज्यादा बढ़ गया। बालक इन सबको करते हुए कभी-कभी बड़ा बंधन अनुभव करने लगता है।

गंभीरता का अभाव—फ्रोबेल ने खेलों को इतना अधिक महत्व दे दिया है कि शिक्षा एक क्रीड़ा बन गई। बालक खेल को खेल ही समझते हैं। बालकों का ध्यान, रंगीन और चमकदार गेंदों, विभिन्न आकारवाले लकड़ी के टुकड़ों, कागज, लकड़ी और मिट्टी के खिलौनों

और गीतों में ऐसा उलझ जाता है कि वह इनसे परे विचार करने की आवश्यकता नहीं समझता। यह स्थिति भावी-जीवन के लिए बड़ी घातक होती है। 'जीवन' एक हँसी-खेल की चीज नहीं। वहाँ तो कठिनाइयाँ और संकट पग-पग पर मिलते हैं। जिन बालकों को ऐसे खेल-प्रधान जीवन का अनुभव हो जाता है और जो उसके अभ्यस्त हो जाते हैं, वे जीवन-संग्राम में क्या कर सकेंगे? सम्भवतः इसी दृष्टिकोण से जर्मनी में किंडर-गार्टेन स्कूलों में नाज़ी सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था। विद्वानों का मत है कि यहाँ केवल बालक का मन बहलता है, शिक्षा नहीं प्राप्त होती।

एक दूसरा तर्क और भी है। बालक को घर से स्कूल में क्यों भेजा जाता है? स्कूल एक ऐसा स्थान है जहाँ बालक ऐसी बातें सीखता है, जो घर में या समाज में नहीं सीख सकता। किंडर-गार्टेन में जितना उसे बताया जाता है, उसे वह घर में ही सीख सकता है। जितना इंद्रिय-ज्ञान उसे यहाँ प्राप्त होता है, उतना तो वह घर में ही अनेक स्थूल वस्तुओं से खेलकर प्राप्त कर लेता है।

खेलों का अनुचित प्रयोग—जीवन में खेल का एक प्रयोजन है। "मन को गंभीर बातों से हटाना और इस प्रकार उस पर पड़े हुए चिंतन-मनन, एकाग्र-बंधन के भार से मुक्त कर उसके तनाव और खिचाव को ढीला कर देना, जिससे उसकी गंभीरता से शरीर पर पड़नेवाला कुप्रभाव दूर हो सके और मन की स्वतन्त्रता तथा उसके उल्लास से शरीर की अन्य इन्द्रियाँ भी सक्रिय, चेतन तथा स्वस्थ रह सकें। खेल का वास्तविक ध्येय मनोरंजन है। उसे शिक्षा में प्रयुक्त करना, खेल की वास्तविकता को नष्ट करना है।

अध्यापक के महत्व के प्रति उदासीनता—'आन्तरिक-क्रिया' पर अत्यधिक विश्वास के कारण, संभवतः फ्रोबेल ने अध्यापक का महत्व कम बताया है। उसका यह पक्ष काफी शिथिल है। अध्यापक के सम्पर्क

से ही बालक का चेतन मन भासमान तथा उद्दीप्त होता है। "वास्तव में सजीव चेतन बालक के लिए सजीव चेतन अध्यापक की आवश्यकता है" जो अपने ज्ञान, चरित्र और व्यवहार से बालक के भीतर बैठे हुए देवत्व को उद्बुद्ध करे, उसमें मानवता के सम्पूर्ण उदात्त भाव भरे और उसे तेजस्वी नागरिक बनावे। लकड़ी और मिट्टी से खेलनेवाले बालक वह तेज नहीं प्राप्त कर सकते, जो चरित्र और विद्या का तेज प्राप्त किये हुए अध्यापक के सम्पर्क में प्राप्त होता है।

मांटेसरी विधि

मॉंटेसरी विधि का आविष्कार करनेवाली विश्व-प्रसिद्ध महिला मेरिया मॉंटेसरी इटली देश की रहनेवाली थीं। उनका जन्म सन् १८७० में हुआ। मेरिया उन जागरूक महिलाओं में गिनी जाती हैं, जिन्होंने सदैव अपने देश के प्रगतिशील आंदोलनों में भाग लिया है। उन्होंने इटली में होनेवाली राजनीतिक उथल-पुथल में भारी हिस्सा लिया, परन्तु आज संसार उन्हें किसी दूसरे रूप में जानता है। उनकी प्रसिद्धि शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से हुई। डाक्टरी की परीक्षा पास करनेवाली, वे प्रथम इटैलियन महिला थीं। प्रारंभ से ही उन्हें बच्चों में रुचि थी। बालकों के मानसिक और शारीरिक विकास के लिए उन्होंने अनेक प्रयोग किये और उन्हीं के परिणामस्वरूप मॉंटेसरी-विधि का जन्म हुआ। आज यह विधि इतनी लोकप्रिय है, कि प्रत्येक देश में, बच्चों की पढ़ाई में कुछ हेर-फेर के साथ इसका प्रयोग अवश्य ही होता है। इस विधि की रूप रेखा की जानकारी प्राप्त करने के पूर्व, हमें उन परिस्थितियों और सिद्धान्तों को समझ लेना आवश्यक है, जिनसे इसकी उत्पत्ति हुई।

(१) निर्बल मस्तिष्कवाले (Feeble minded) ***बालकों पर मेरिया के प्रयोग तथा उनसे प्राप्त अनुभव***—निर्बल मस्तिष्क वाले

बालकों की मुख्य विशेषतायें यह हैं कि वे अपनी कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेंन्द्रियों का ठीक से उपयोग नहीं कर सकते। चलने-फिरने, बोलने तथा अपने शरीर का ठीक संतुलन करने में असमर्थ होने के कारण वे अपनी स्वास्थ्य-रक्षा नहीं कर सकते। ऐसे बालकों के नाक, आँख और मुँह से पानी बहता रहता है। वास्तव में उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ अविकसित तथा अक्षम होती हैं। न उनमें दृढ़ता होती है और न भावों की स्थिरता। उनके संबंध में, मेरिया से पहले बहुत-कुछ खोज हो चुकी थी। उनकी दुर्दशा को ध्यान में रखते हुए सेगुइन (Seguin) नामक विद्वान ने एक पुस्तक[1] लिखी जिसमें उसने इस प्रकार के रोगी बालकों की शिक्षा पर जोर दिया और यह आशा प्रकट की कि निकट भविष्य में अवश्य ही कोई ऐसी शिक्षण-विधि तैयार होगी जिसके द्वारा इस प्रकार के बालक इस योग्य बनाये जा सकेंगे कि वे साधारण जीवन बिता सकें।

मेरिया माँटेसरी ने सेगुइन की पुस्तक पढ़ी। वे स्वभाव से दयालु तथा बालकों से अपार स्नेह करनेवाली स्त्री थीं। अतः उन पर इस पुस्तक का बड़ा प्रभाव पड़ा। डाक्टरी पास करने के बाद इन रोगी बालकों की ओर उनका ध्यान गया। रोम नगर में निर्बल मस्तिष्कवाले बालकों की शिक्षा का भार उन्होंने अपने कंधों पर ले लिया। उन्होंने अन्य विद्वानों जैसे लोम्ब्रोजो (Lombroso) और सर्जी (Sergi) की विधियों का अध्ययन किया और उन्हें अधिक उन्नत बनाने के प्रयत्न में वे लग गयीं। उनके परिश्रम का परिणाम यह हुआ कि बेचारे रोगी बालकों के कल्याण का मार्ग खुल गया। अर्धविकसित या पूर्ण अविकसित मष्तिष्कवाले बालक, स्वस्थ (Normal) बालकों की तरह कुछ न कुछ पढ़-लिख सकने में समर्थ हो सके। इस सफलता का श्रेय मेरिया की अनोखी शिक्षण-विधि को प्राप्त है। माँटेसरी-विधि का

1—Idiocy, Causes and its Treatment by Physiological Methods—Seguin.

आधार उनके वे ठोस अनुभव हैं और उन्होंने इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार भी किया है।

(२) रोम की सामाजिक स्थिति के कारण 'बच्चों के घर' की कल्पना—रोम में, निर्धन गृहस्थों की सामाजिक दशा अत्यंत दयनीय थी। वे बेचारे, गंदे मकानों में रहने के कारण अस्वस्थ हो जाते थे। उनकी दशा सुधारने के लिए नये प्रकार के मकान बनवाये गये, जिनकी सफाई और देख-रेख का प्रबंध उन्हें ही सौंप दिया गया। अब एक नयी समस्या सामने आ गयी। माँ-बाप तो काम करने के लिए घर से निकल जाते थे परन्तु बच्चे घर पर रहकर शैतानी करते। वे मकानों की दीवारें और दूसरे सामान को हानि पहुँचाते थे। इससे नये मकानों के व्यवस्थापकों को एक चिंता पैदा हुई। फलतः वहाँ के डाइरेक्टर-जेनरल को एक बात सूझी। उन्होंने तै किया कि एक ऐसा बड़ा कमरा तैयार कराया जाय, जिसमें उस नयी बस्ती के ३ वर्ष से लेकर ७ वर्ष वाले, सारे बालक इकट्ठा कर दिये जायँ। वहाँ उनके खेलने तथा काम करने का आयोजन हो। उसकी देखभाल के लिए एक शिक्षक नियुक्त कर दिया जाय। इस प्रकार के स्थान को 'बच्चों का घर' (House of Childhood) का नाम दिया गया। इसकी स्थापना का उद्देश्य उन बालकों को पढ़ाई का मुफ्त प्रबंध करना था जिनके माता-पिता सरकारी काम में लगे रहने के कारण उनकी देखभाल करने में असमर्थ थे। यहाँ बच्चों को नहाने, कपड़े धोने, और सफाई रखने की शिक्षा दी जाती थी। अनुशासन की अवहेलना करने वाले बालकों को निकाल दिया जाता था। सन् १९०६ में डाइरेक्टर महोदय ने इस संस्था का भार अनुभव प्राप्त मेरिया पर छोड़ दिया। इस प्रकार मांटेसरी विधि में 'बच्चों के घर' की परिकल्पना की गई। यही उसका इतिहास है। मांटेसरी स्कूल को बच्चों का घर इसलिये कहा जाता है कि यहाँ उन्हें पूर्ण रूप से पारिवारिक-जीवन का अनुभव होता है।

(३) *मेरिया मॉटेसरी के दार्शनिक विचार*—मेरिया ने अपनी हस्त पुस्तिका में लिखा है कि शरीर-रचना-विज्ञान तथा चिकित्सा-विज्ञान की खोजों के फलस्वरूप बच्चों की स्वास्थ्य-रक्षा में काफी तरक्की हुई है। आधुनिक मातायें (यूरोप में !) स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का पालन करने लगी हैं और शिशुओं की मृत्यु-संख्या में भारी कमी हुई है। हर्ष का विषय है कि वर्तमान मानव-नस्ल अधिक स्वस्थ तथा शक्तिशाली होती जा रही है। परन्तु क्या शारीरिक स्वास्थ्य ही सब कुछ है? वास्तव में मानव-जीवन शरीर तक सीमित नहीं। बच्चों का शारीरिक ही नहीं, अपितु मानसिक और आध्यात्मिक विकास होना भी जरूरी है। अतः विज्ञान का काम अभी पूरा नहीं हुआ है जिस तरह विज्ञान के द्वारा भौतिक नियमों की जानकारी हमें प्राप्त हुई है उसी तरह मानसिक विकास के नियमों की खोज करना जरूरी है। जब यह नियम मालूम हो जाय तो उनके आधार पर बच्चों की शिक्षा का ऐसा प्रबंध हो कि उनके चरित्र, बुद्धि और दूसरी रचनात्मक शक्तियों का, जो मनुष्य की आत्मा में प्रसुप्तावस्था (Dormant Condition) में निष्क्रिय पड़ी हैं, अभिवर्धन हो। मेरिया के मतानुसार शिक्षा का काम इस विकास में सहायता देता है।

इस प्रधान उद्देश्य को लेकर मेरिया ने अपनी शिक्षण-विधि में जिन मूल तत्वों का समावेश किया, वे निम्नलिखित हैं:—

(क) *लाके* (Locke) *के इन्द्रियजनित-ज्ञान के सिद्धांत* (Experions) *का समावेश*—अंग्रेज दार्शनिक लाके की विचारधारा के सम्बन्ध में हम पहले लिख चुके हैं। उनका मत है कि ज्ञान सहज नहीं है। मनुष्य का मन निष्क्रिय जड़-पिंड के समान है। बाह्य परिस्थितियों के सम्पर्क से उस पर चिन्ह अंकित हो जाते हैं, जिन्हें विचार कहते हैं और ये प्रारंभिक विचार आपस में मिलकर ज्ञान को जन्म देते हैं। बाह्य परिस्थितियों और मन के बीच सम्पर्क का साधन मनुष्य की

ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इसीलिए ज्ञानेन्द्रियों को 'ज्ञान का द्वार' कहा गया है। इनके द्वारा मनुष्य को अनुभव प्राप्त होता है और इन्हीं के द्वारा उसका ज्ञान बढ़ता है। मेरिया ने लाके द्वारा प्रतिपादित, इन्द्रियों की उपयोगिता को समझा और इन्द्रियों को सबल बनाने का समर्थन किया। बच्चों की इन्द्रिय-शिक्षा पर उन्होंने बहुत जोर दिया। उनका कहना है कि जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए बच्चों को परिस्थितियों—हवा, पानी, और भोजन पर निर्भर रहना पड़ता है, उसी प्रकार उन्हें मानसिक विकास के लिए वाह्य परिस्थितियों का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है। इस सहारे का आधार बच्चों की ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। माँटेसरी-विधि में इसीलिए इन्द्रिय-शिक्षा को विशेष महत्व प्राप्त है।

(ख) वैकासिक मनोविज्ञान (Developmental Psychology) **का प्रभाव**—प्राणि-विज्ञान और वनस्पति-विज्ञान ने जीवों और पेड़ पौधों की बाढ़ (Growth) के सम्बन्ध में खोजकर के बहुत से नियम निर्धारित किए हैं। इसी तरह मनोवैज्ञानिकों ने भी बालकों के मानसिक विकास का अध्ययन करके कुछ नियम खोज निकाले हैं। शैशवकाल, बाल्यकाल तथा यौवनारम्भकाल में मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक तथा भाव-सम्बन्धी परिवर्तनों का गहरा अध्ययन करके यह नियम बनाये गये हैं। मेरिया माँटेसरी ने इन नियमों से लाभ उठाया है। उनका कहना है कि शिक्षण में इन नियमों की अवहेलना करना अनुचित है। माँटेसरी विधि में इन नियमों का पूरा ध्यान रक्खा गया है। इसका प्रमाण यह है कि इस विधि से पढ़ाई करने में छोटे बालकों से अधिक मानसिक परिश्रम नहीं कराया जाता, क्योंकि इस अवस्था में उनकी मानसिक शक्ति अधिक विकसित नहीं होती। ज्यादातर उन्हें खेल-कूद पसंद होते हैं। अतः यहाँ बालकों को खेलने का पूरा अवसर मिलता है।

(ग) श्रम का महत्व—अनुभव के आधार पर मेरिया का कथन है

को मिलता है। कोई भी जीव श्रम से बच नहीं सकता। बालक भी श्रम करते हैं। वयस्क का श्रम हमें देखने को मिल जाता है क्योंकि उन्हें हम नौकरी, व्यापार या मजदूरी करते हुए देखते हैं। पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो खेल में बालकों को उतना ही श्रम करना पड़ता है जितना वयस्कों को अपने कारोबार में। इसके अतिरिक्त बालकों का श्रम वाह्य और दृष्टिगत (External visible work) नहीं होता। यहाँ तक कि आराम करते समय भी वे रहस्यमय आंतरिक स्वनिर्माण का काम (mysterious inner work of autoformation) पूरा करते रहते हैं।

बालक कई तरह से श्रम करते हैं। (१) वे अंग-संचालन-क्रिया (Motor function) द्वारा श्रम करते हैं, जैसे अपने शरीर का संतुलन करने, चलने तथा कई अंगों को एक ही साथ काम में लाने आदि में (२) ऐंद्रिक-अनुभूति-क्रिया—(Sensory function) में उनका श्रम हो जाता है, जैसे बाह्य परिस्थितियों से संवेदन ग्रहण करने, चीजों को पहचानने, बुद्धि-प्रयोग करने और पर्यवेक्षण करने आदि में। (३) भाषा सीखने में उन्हें उक्त दोनों तरह का श्रम पड़ जाता है, जैसे ओठों और जबान के चलाने में अंग-संचालन का और भावों को समझने में ऐंद्रिक अनुभूति का श्रम करना पड़ता है।

श्रम का असली महत्व यह है कि, इसके द्वारा बालक का मानसिक विकास पूरा और पक्का हो जाता है। मानसिक विकास सीखने (learning) और अंगों के पुष्ट होने (Maturation) दोनों पर निर्भर है। श्रम द्वारा इन दोनों प्रक्रियाओं को उत्तेजन मिलता है। सबसे अच्छी बात यह है कि बालक को श्रम करने में आनन्द आता है। जिस प्रकार एक प्रवासी स्वदेश से दूर जाकर अपरिचित जगह में बसते समय, वहाँ की परिस्थिति के अनुकूल श्रम करके अपने को इस योग्य बना लेता है कि वह अपना जीवन सुख से बिता सके, उसी प्रकार माता के उदर से

जन्म लेकर बालक भी श्रम द्वारा इस नवीन संसार में अपना स्थान बना लेता है। शिक्षा का कार्य बालकों को इस नवीन संसार में अपने को उसके अनुकूल बनाने (Adjustment) में सहायता देता है। इस कार्य में सफलता तभी मिल सकती है, जब शिक्षण-विधि वैज्ञानिक तथा विचारपूर्ण हो।

(घ) *बालकों की स्वतन्त्रता तथा शिक्षक की स्थिति*—मोंटेसरी का विचार है कि बच्चे अपनी पढ़ाई स्वयं करते हैं। इसे स्वशिक्षा (Auto education) कहते हैं। अतः जहाँ तक हो सके, बच्चों को अनुभव करने का पूरा अवसर देना चाहिए। मोंटेसरी के यह विचार फ्रांसीसी दार्शनिक रूसो (Rousseru) के विचारों से बहुत-कुछ मिलते जुलते हैं। उसका मुख्य सिद्धांत बालकों की अबाध स्वतन्त्रता है। मॉंटेसरी के मत में शिक्षक बालकों का पथप्रदर्शक है। वह उनके आनन्द और अनुभव में कोई बाधा नहीं डालता। वह बालकों को उस तरह नहीं हँकाता, जिस तरह गड़रिया भेड़ों को खदेड़ता है। इसके विपरीत वह उनकी इच्छाओं और विचारों का आदर करता है। बच्चे अगुआ बनकर हर-एक काम करते हैं। अपने लिए काम का चुनाव, काम करने का ढंग सभी-कुछ बालकों की अपनी जिम्मेदारी है। शिक्षकों के लिए मोंटेसरी का उपदेश है—'हमें बालकों के सुख में भाग लेना चाहिए। हम भी तो उन्मुक्त आनन्द और आजादी चाहते हैं। फिर बच्चे यदि इनकी कामना करते हैं तो क्या पाप करते हैं? वे भी मनुष्य हैं और निष्कपटता में वे वयस्क से श्रेष्ठ होते हैं। उनके ऊपर अपने नियम लादकर हम उनके जीवन को भार बना देते हैं। उनके साथ उदार और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने की आवश्यकता है।" साथ ही वे चेतावनी देती हैं कि दया का अर्थ दुलार नहीं है। उसका अर्थ केवल यह है कि बालकों की इच्छाओं और मनोभावों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाय। अभी तक हमें उस प्रक्रिया (Process) की तनिक भी जानकारी नहीं

है जिसके द्वारा बालक बढ़कर वयस्क हो जाता है। यह प्रक्रिया उसी तरह रहस्यमय है जैसे रज और वीर्य के दो बिंदुओं से बालक की उत्पत्ति। यह सब कार्य ईश्वरीय गति से होते हैं, इसलिए उसमें छेड़छाड़ करने की जरूरत नहीं। शिक्षण में, इसीलिए, दमन से काम लेना अनुचित है। बालकों को स्वतंत्र रहकर बढ़ने देना चाहिए।

(ङ) *अंतिम ध्येय, नैतिकता*—इस प्रकार स्वतंत्रता का उद्देश्य बच्चों में उत्तरदायित्व की भावना पैदा करना है। सभ्यता के प्रथम चरण में स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व, दोनों का समाज में अभाव था। सभ्यता का स्वर्णयुग वह होगा जब यह दोनों गुण समाज में पूर्ण रूप से व्याप्त हो जायेंगे। मानव इतिहास इस बात का साक्षी है कि ज्यों-ज्यों स्वतंत्रता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे सभ्यता भी विकसित होती जाती है। स्वर्णयुग लाने के लिए मनुष्य की संतानों में, अनुशासन, स्वावलंब, उत्तरदायित्व आदि नैतिक गुण उत्पन्न करने की आवश्यकता है और गुण उत्पन्न करना माँटेसरी विधि का मुख्य उद्देश्य है।

मेरिया का कहना है—"छोटे बच्चों की पढ़ाई के लिए, मेरी विधि का वास्तविक उद्देश्य यही (नैतिकता पैदा करना) है और इसी कारण से यह कुछ ऐसे सिद्धांतों पर आधारित है और कुछ ऐसे विशेष ढंगों का प्रयोग इसमें होता है जो आमतौर से प्रचलित नहीं हैं। यह विधि सब बालकों के लिए न होकर; केवल ३ से लेकर ७ वर्ष के बालकों के लिए है अर्थात् यह उस अवस्था के लिए उपयुक्त है, जिसमें बालकों का विकास होता है। मेरी विधि अपने उद्देश्य तथा तरीके में पूरे तौर से वैज्ञानिक है। यह बालकों को आगे चलकर उन्नति करने के योग्य बनाती है और प्रयोग करने में केवल बालक के शारीरिक विकास का ध्यान नहीं रखती, वरन् स्वास्थ्य-रक्षा-विज्ञान ने बच्चों के स्वास्थ्य को स्थायी बनाने में जो-कुछ कमी रक्खी है, उसे यह विधि पूरी करती है।"

माँटेसरी-विधि से पढ़ाई कैसे होता है ?

(अ) बच्चों का घर (Childrens'house)—माँटेसरी-विधि को सफल बनाने के लिए सारे स्कूल का प्रबन्ध बिल्कुल नये ढंग से करना पड़ता है। कोमेनियस के शब्दों में, प्राचीन ढंग के स्कूल कसाई खाने से बदतर थे, वहाँ मारपीट और अत्याचार का बोलबाला था। मेरिया माँटेसरी ने स्कूल को 'बच्चों का घर' कहकर, उसे सार्थक बनाने के उद्देश्य से स्वर्गतुल्य बनाने की चेष्टा की। यहाँ बच्चे उसी तरह सुख से जीवन बिताते हैं, जैसे अपने परिवार या घर में।

इस प्रकार का स्कूल काफ़ी जगहदार होता है। इसका उद्देश्य बच्चों को खेलने तथा हर प्रकार के काम के लिये पूरी सुविधा देना है। इमारत की शक्ल किसी एक ढंग की नहीं होती। धन की अधिकता या कमी के अनुसार उसका रूप बदला जा सकता है। हाँ, हर हालत में उसकी शक्ल घर की तरह की होना आवश्यक है। माँटेसरी स्कूल बाग से घिरे हुए बँगले की तरह दिखाई देता है। इसके कमरे खूब लम्बे-चौड़े और हवादार होते हैं। बाग में जगह-जगह पर छायादार स्थान होते हैं जिनमें बालक पूरी आजादी से खेल सकते हैं। बाग़ में बने हुए चबूतरे सोने के काम में लाये जा सकते हैं। कभी-कभी, बालक अपनी मेज और कुर्सी बाहर निकाल कर रख सकते और उन पर पढ़ सकते हैं। यहाँ साफ़ और ताजी हवा मिलती है, परन्तु धूप या वर्षा से बचाव का पूरा प्रबन्ध होता है।

अब स्कूल की इमारत को लीजिये। बीच में एक बड़ा कमरा बना होता है जिसके अगल-बगल में स्नानगृह तथा रसोईघर होते हैं। दो तरफ बरामदे होते हैं। सबका कमरा (Common-room) और शारीरिक श्रम तथा व्यायाम के लिए भी कमरे होते हैं। बीच का बड़ा कमरा बालकों की पढ़ाई के लिए होता है। कमरों में सफाई और सजावट का पूरा ध्यान रक्खा जाता है। यहाँ पर काम में आनेवाला फर्नीचर

हल्का होता है ताकि बच्चे आसानी से उसे उठाकर इधर-उधर ले जा सकें। यह सारा सामान हल्के तथा चित्त प्रसन्न करनेवाले रंग में रँगा होता है। गोलाकार, आयताकार तथा वर्गाकार मेजें और घूमने तथा झूलनेवाली कुर्सियाँ पड़ी रहती हैं। मुलायम गद्दे और सोफे भी होते हैं खुली हल्की अल्मारियाँ दीवारों के पास रक्खी होती हैं। इन्हें बच्चे प्रयोग करते हैं। उनकी लम्बाई कम रहती है, ताकि बच्चे उनके सिरे को आसानी से छू सकें। इन अलमारियों में शिक्षोपकरण रक्खा जाता है और ऊपर खिलौने। हैंडेलदार दराज की अल्मारी प्रत्येक बालक को अलग मिलती है। दीवारों पर नीचे की ओर जहाँ तक बच्चों का हाथ आसानी से पहुँच सकता है, श्यामपट (Black board) बने होते हैं। बच्चे उन पर लिखने तथा चित्र खींचने का अभ्यास करते हैं। ऊपर की ओर दीवारों पर स्वस्थ बालकों, परिवारों, फूलों तथा प्राकृतिक दृश्यों के और ऐतिहासिक या पौराणिक चित्र लटका दिये जाते हैं। फर्श पर रंगीन क़ालीनें बिछी होता हैं। बिछाने का काम बच्चे स्वयं करते हैं।

बच्चों के बैठने का कमरा भी खूब सजा होता है। यहाँ बच्चों को हर तरह से मन बहलाने की सुविधा है। वे जब चाहें बातें करें या खेलें या गाना गायें। मेजें और सोफे यहाँ भी रक्खे होते हैं। उनके खेलने के लिये मेजों पर रंगीन तस्वीरें, लकड़ी के रंगीन टुकड़े और पियानो या हारमोनियम रख दिये जाते हैं। शिक्षक यहाँ आकर उनका मनबहलाव कर सकते हैं। कभी-कभी कहानियाँ सुनाकर वे बच्चों का मनोरंजन करते हैं।

रसोईघर में बर्तन, चाकू, काँटे, टेबुल क्लाथ, तौलिए, चम्मच और तश्तरियाँ साफ़-सुथरे ढंग से सजाकर रक्खी होती हैं। उन्हें साफ करने तथा सजाने का काम बालक स्वयं करते हैं। इन्हें रखने के लिए एक खुली अलमारी भी होती है। ड्रेसिंग के कमरे में एक खुली अलमारी का एक एक खाना हर बालक के नाम लिख दिया जाता है। जिसमें

वह अपना सामान रख सकता है। यहीं पर साबुन और पानी का नल भी रहता है। बच्चे स्नान करके शरीर की सफाई करते और वस्त्र बदलते हैं। बाद में अपने कपड़े कायदे से खूँटियों पर टाँग देते हैं।

'बच्चों का घर' हर समय सक्रिय जीवन और उत्साह से परिपूर्ण दिखाई देता है। जिस तरह शहद के छत्ते में मधु-मक्खियाँ धुन के साथ मधु-संग्रह में जुटी रहती हैं, ठीक वैसा ही दृश्य यहाँ देखने को मिलता है।

(३) *पेडोमीटर* (Paedometer)—*बच्चों की ऊँचाई नापने का यंत्र*—इस यंत्र के सहारे, दो बच्चे एक साथ नीचे लगे तख्ते पर खड़े होकर लोहे की छड़ में लगे हुए खिसकने वाले दिग्दर्शक (Pointer) द्वारा अपनी लम्बाई नाप सकते हैं। बच्चे इस काम में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। बच्चों की बाढ़ का पूरा ब्योरा (record) सुरक्षित रक्खा जाता है। यह बच्चों के लिए खेल की वस्तु है साथ ही उनके शारीरिक विकास के अध्ययन का ठोस साधन है। इसलिए यह पेडोमीटर बड़े काम की वस्तु है।

(उ) *शिक्षोपकरण* (Didactic Material) —बालकों की पढ़ाई में बहुत-सी वस्तुएँ प्रयुक्त होती हैं, जैसे रंग-रंग के विभिन्न आकारों वाले लकड़ी के टुकड़े और खिलौने। इन्हें शिक्षोपकरण कहते हैं। कारण, यही बालकों को एक प्रकार से शिक्षा देते हैं। यह वैज्ञानिक तरीके से तैयार किये जाते हैं और यह बालकों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य करते हैं। इनकी पूरी सूची यहाँ देने के बजाय अभ्यासों के साथ इनका वर्णन अधिक उत्तम जान पड़ता है।

मॉंटेसरी शिक्षण के तीन अंग

(अ) ज्ञानेंद्रियों की शिक्षा

शिक्षोपकरण—(१) ठोस तथा फिट हो जाने वाले लकड़ी या धातु के टुकड़ों के तीन सेट।

(२) ठोस तथा क्रम से छोटे से लेकर बड़े और विभिन्न आकारों

और रंगों के टुकड़ों के सेट जैसे गुलाबी वर्गाकार, खाकी तिकोने, हरी, लाल, नीली बेलनाकार (rods) अण्डाकार टुकड़े ।

(३) ज्यामितीय आकार के टुकड़े जैसे वृत्त, त्रिभुज, आयत, वर्ग, बहुभुज आदि ।

(४) आयताकार खुरदरी और चिकनी सतह वाली टिकिएँ ।

(५) विभिन्न भारों वाली (weight) टिकिएँ ।

(६) दो संदूकें-प्रत्येक में चौंसठ रंगीन टिकिएँ ।

(७) दराज वाला (drawers) एक बक्स जिसमें बहुत सी टिकिएँ होती हैं ।

(८) कार्डों के तीन सेट, जिन पर ज्यामितीय (Geometrical) चेत्र चिपके होते हैं ।

(९) बजाने वाली घंटियों के दुहरे सेट ।

इन शिक्षोपकरणों का प्रयोग उन अभ्यासों में होता है, जो इंद्रिय शिक्षा के लिए नियत हैं । उदाहरण के लिए कुछ अभ्यास नीचे दिये जाते जाते हैं जिनसे इन शिक्षोपकरणों का प्रयोग जाना जा सकता है ।

(१) बेलनों (Cylenders) का अभ्यास—यह अभ्यास ढाई और तीन वर्ष के बालकों के लिए उपयुक्त है । एक बक्स में ठोस लकड़ी के तीन लम्बे टुकड़े लगे रहते हैं । प्रत्येक टुकड़े में दस छेद बने होते हैं । इस छेदों में समा जाने वाले दस बेलन भी साथ होते हैं । बालक इन बेलनों को उन छेदों में इस प्रकार रखते और निकालते हैं कि उन्हें यह ज्ञान हो जाता है कि कौन सा बेलन किस छेद में ठीक फिट हो सकता है । बेलनों को पकड़ने के लिए उनके ऊपरी सिरे पर एक घुण्डी लगी होती है । यह बेलन तीन प्रकार के होते हैं । (अ) दस बेलन, एक ऊँचाई परन्तु विभिन्न मोटाई के । (ब) दस बेलन एक मोटाई के परन्तु विभिन्न ऊँचाई के । (स) दस बेलन विभिन्न मोटाई और विभिन्न ऊँचाई के ।

अभ्यास के समय सारे बलन मिला दिये जाते हैं और बालक छाँट करके उन्हें यथोचित छेदों में रखते हैं।

अभ्यास देखने में खेल जान पड़ता है परन्तु इसका आधार मनोवैज्ञानिक है। इस अभ्यास में बालकों को प्रयत्न और भूल (Trial and Error) के सिद्धांत से सीखना बताया जाता है। इस अभ्यास में उन्हें बड़ा आनंद आता है। असफलता के साथ उन्हें हताश तथा क्रोध आता है परन्तु सफलता में अत्याधिक आनंद भी मिलता है। माँटेसरी का दावा है कि इस अभ्यास में बालक इतनी रुचि लेते हैं कि प्रायः दिन में चालीस बार तक वे इसे दुहराते हैं। सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि खेल ही खेल में, उनकी पर्यवेक्षण, तुलना, तर्क तथा निर्णय आदि शक्तियों का विकास हो जाता है। बच्चों में स्वशिक्षण (auto education) की आदत आ जाती है क्योंकि यह शिक्षोपकरण ऐसे ढंग से बना है कि बालकों को अपनी भूल सुधारना पड़ती है। चूंकि एक बेलन के लिए एक ही छेद होता है, इसलिए जब तक भूल दूर नहीं होती, काम अधूरा रहता है। बालकों को इस अभ्यास में लगे हुए देखने से उसकी रुचि, लगन, उत्साह और बुद्धि की परीक्षा भी होती है। अभ्यास के समय शिक्षिका को यह ध्यान रखना पड़ता है कि बेलन न तो गिरने पायें और न कोई शोर होने पाये। अभ्यास के अंत में बेलनों को छेदों से निकाल निकालकर रख देना चाहिए।

(२) *मीनार बनाने का अभ्यास*—गुलाबी रंग के ठोस लकड़ी के बने दस घन, जो क्रम से छोटे-बड़े होते हैं। इस अभ्यास के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं। बड़े घन पर उससे छोटा घन रखते हुए बालक मीनार बनाने का अभ्यास करते हैं। इससे बड़े से छोटे का क्रमिक ज्ञान प्राप्त होता है।

(३) *सीढ़ी बनाने का अभ्यास*—इस अभ्यास में बालक दस चौकोर टुकड़ों को, जो क्रम से पतले से मोटे होते जाते हैं, इस प्रकार रखते हैं कि सीढ़ी बन जाती है।

स्पर्शेंद्रिय के अभ्यास

(१) *चिकने और खुरदरे पहचान का अभ्यास*—इसमें एक आय-कार बोर्ड का प्रयोग होता है। इसकी कुछ सतह चिकनी और कुछ खुरदरी होती है। बालक अपनी उँगलियों से दोनों प्रकार की सतह छूते हैं और दोनों में अंतर समझने लगते हैं। यह अंतर वे दोनों प्रकार की संवेदनाओं (Sensations) का अनुभव करके समझते हैं।

एक दूसरे बोर्ड पर जिसकी सारी सतह चिकनी होती है, बलुए कागज़ (Sand paper) की धारियाँ चिपका कर बालकों के आगे रख दी जाती हैं। इन पर अपनी उँगलियाँ फिरा कर बालक चिकने और खुरदरे का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(२) **कठोरता तथा कोमलता की पहचान**—इसी अभ्यास में सूती तथा रेशमी कपड़ों को छूकर, कठोरता और कोमलता की पहचान बालक करते हैं।

(३) हल्के और भारी की पहचान—हल्की और भारी वस्तुएँ अभ्यास के लिये दी जाती हैं। बालक कभी एक और कभी दूसरी वस्तु उठा कर 'हल्के और भारी' का अनुभव करते हैं।

स्पर्शेन्द्रिय की शिक्षा में शिक्षिका को बहुत परिश्रम करना पड़ता है। अभ्यास करते समय बालकों की आँखों पर पट्टी बाँध दी जाती है। पर, अपनी भूल को समझने के लिये आँखों पर से पट्टी हटाने की अनुमति उन्हें दे दी जाती है। वस्तुओं को छूने, उठाने और रखने में बालकों को अंगसंचालन में, सुन्दरता का ध्यान रखना पड़ता है।

मेरिया मांटेसरी ने स्पर्शेंद्रिय की शिक्षा को बड़ा महत्व दिया है। स्पर्श द्वारा पहचान करने को उन्होंने एक अलग शक्ति माना है जिसे (Steriognostic sense) कहते हैं।

नेत्रेन्द्रिय की शिक्षा

(१) *रंगों की पहचान का अभ्यास*—दो बक्सों में टिकियें भ
रहती हैं। प्रत्येक बक्स में चौसठ टिकियें होती हैं। आठ रंग की टिकि
होती हैं और प्रत्येक रंग की आठ टिकियें क्रमशः हल्की से लेक
गाढ़े रंग की होती हैं। रेशमी रंगीन कपड़ा उन पर मढ़ा हुआ हो
है। बालक दोनों बक्सों से एक रंग की टिकियें निकाल कर जो
मिलाता है। प्रारम्भ में केवल सोलह टिकियों के आठ जोड़े मिलान
सीखना पड़ता है और अंत में चौसठ जोड़े मिलाना। इस अभ्यास द्वार
बालकों को एक रंग के विभिन्न 'शेड' (Shade) का ज्ञान ह
जाता है। उनकी निरीक्षण, तुलना और विवेक शक्ति का विकास होत
है। नेत्रेन्द्रियों के साथ-साथ कर्मेंद्रियों की साधना पूरी हो जाती है,
उँगलियाँ महीन काम करने में अभ्यस्त हो जाती हैं।

१—ज्यामितीय (Geometricah) चित्रों के अभ्यास

एक बक्स में ६ चौखटे (Frame) रक्खे होते हैं। हर ए
चौखटे में ज्यामितीय चित्रों की शक्ल के, जैसे वर्ग, आयत, त्रिभुज
बहुभुज, आदि के छेद बने होते हैं। उन छेदों में बैठालने के लिए उन्ह
ज्यामितीय शक्लों के लकड़ी के टुकड़े भी होते हैं, जिनपर घुँडियाँ लग
होती हैं, ताकि बालक उन्हें पकड़ कर छेदों में फिट कर सकें। प्रारं
में यह अभ्यास आँखें बन्द करवा कर कराया जाता है। बच्चे उन छेदो
को और लकड़ी के टुकड़ों को उँगलियों से छूकर, तुलना करते हैं औ
उन्हें एक समान समझ कर फिट करते हैं। इस अभ्यास के बाद बालको
को ज्यामितीय चित्रों का पूरा ज्ञान हो जाता है और वे सहज में ही,
त्रिभुज, वर्ग और आयत आदि की परिभाषा आगे चलकर समझ लेते
हैं। इस अभ्यास के बाद, बालक रंगीन कागज से ज्यामितीय चित्र
काटने का अभ्यास करते हैं। उन्हें, सफेद कागज पर चिपकाते हैं।
फिर अंत में कागज पर कलम से बिना किसी सहायता के वे शक्लें
खीचना सीख लेते हैं।

इन अभ्यासों द्वारा बालक को गणित-शास्त्र के मूल तत्वों को सीखने में आगे चलकर बड़ी सहायता मिलती है। मेरिया ने इनमें, मूर्त से अमूर्त की ओर (From concrete to Abstract) वाले सिद्धांत का प्रयोग किया है। छोटी अवस्था में रेखागणित की शक्लों का जबानी ज्ञान कराना बड़ा कठिन होता है। मेरिया ने इस समस्या को हल कर दिया। नेत्रेन्द्रियों की सहायता से ठोस वस्तुओं के सहारे जो ज्ञान बालकों को प्राप्त होता है वह स्थायी रहता है। ज्यामितीय शक्लों के स्मृति-चित्र (Memory Images) उनके मन-पटल पर हमेशा के लिए अंकित हो जाते हैं। उनकी परिभाषाएँ, रटने की अपेक्षा समझ कर याद कर ली जाती हैं। बालकों का मन नहीं ऊबता। वे इस अभ्यास को करने का बार-बार आग्रह करते हैं। एक बार एक निरीक्षक ने माँटेसरी स्कूल में जाकर बिस्कुट बाँटे। बालकों ने तुरंत कहना प्रारंभ किया—"यह त्रिभुज है।", "यह आयत है" आदि। बालकों के इस ज्यामितीय ज्ञान को देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

कर्णेन्द्रिय की शिक्षा

इस प्रकार की शिक्षा का विस्तृत-वर्णन 'संगीत-शिक्षा' के अन्तर्गत भी आयेगा। विशेषरूप से इसके लिए भी कुछ अभ्यास नियत हैं। कार्डबोर्ड के बने हुए छः बेलनों द्वारा बालकों को विभिन्न स्वरों का ज्ञान कराया जाता है। उनको हिलाने से अनेक प्रकार के स्वर उत्पन्न होते हैं। स्वर के भारीपन और हल्केपन को समझ कर, उसी क्रम में बेलनों को रखना बताया जाता है।

ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा के सामान्य नियम

(१) आकार की पहचान—पढ़ाते समय शिक्षिका को यह ध्यान रखना चाहिये कि बालकों को वस्तु के आकार का पूरा ज्ञान हो जाय। जैसे त्रिभुज कहते ही, बालक समझ ले कि यह तीन भुजाओं से घिरी शक्ल की कोई वस्तु है।

(२) *समानता का बोध*—बालकों में तुलनात्मक शक्ति अवश्य पैदा करना चाहिये। उपकरणों के प्रयोग के समय उनका ध्यान दो वस्तुओं में समानता की ओर अवश्य आकर्षित करना चाहिए।

(३) *विभिन्नता का बोध*—समानता की तरह विभिन्नता का बोध भी बालकों को साथ ही कराते रहना उचित है।

(४) *'पृथकता' के नियम का पालन*—ज्ञानेंन्द्रियों के शिक्षण में पृथकता के नियम (Method of Isolation) का पालन होना बड़ा जरूरी है। इसका तात्पर्य यह है कि एक समय में एक ही ज्ञानेंद्रिय की शिक्षा होनी चाहिये। बालक जहाँ तक हो सके, जिस समय आँखों से काम ले रहा हो, किसी दूसरी ज्ञानेन्द्रिय का प्रयोग न करने पाये।

कर्मेंद्रियों की शिक्षा

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स (William James) का कथन है कि जन्म के समय शिशु केवल अव्यवस्थित और अस्पष्ट संवेदनायें ग्रहण करता है। उसमें प्रत्यक्षीकरण (Perception) की शक्ति नहीं होती। उसकी आँगिक क्रियायें भी अस्पष्ट और उद्देश्यपूर्ण नहीं होतीं। प्रत्येक अंग अपना विशिष्ट (Specialized) कार्य करने में असमर्थ होता है। पहले विकास काल में, उसके अंग अपना-अपना अलग काम करते हैं। अंगों के समायोजन (Motor Coordination) की क्रिया वे बाद में सीखते हैं, जैसे एक साथ हाथ, उँगलियों और आँखों के पारस्परिक सहयोग से काम करना आदि। माँटेसरी शिक्षण-विधि में आँगिक समायोजन (Motor coordination) पर पूरा ध्यान रक्खा जाता है। ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा में यह शक्ति बढ़ती है परन्तु इसके लिये अलग अभ्यास बनाये गये हैं। इन अभ्यासों का उद्देश्य बच्चों के अनियंत्रित अंग-संचालन (Disorderly Movements) को दुरुस्त करना है। इसके द्वारा वे गृहस्थाश्रम में वस्तुओं को कायदे से रखने

और उठाने की आदत सीख लेते हैं। कर्मेंद्रियों की शिक्षा का यही अर्थ है और इसके लिए निम्नलिखित अभ्यास नियत हैं:—

(१) दैनिक-जीवन के प्रारंभिक किंतु अनिवार्य कार्य, जैसे कायदे से चलना, उठना, बैठना, वस्तुओं को उठाना और धरना आदि।

(२) अपने शरीर की सफाई का ध्यान रखना, कपड़े धोना, और फैलाना आदि।

(३) घर-गृहस्थी का प्रबन्ध करना।

(४) बागबानी।

(५) हाथ से काम करने की कलाएँ।

(६) खेलकूद, कसरत करना।

(७) अंगों का कलात्मक परिचालन (Graceful-Movements) सीखना।

यह अभ्यास 'बच्चों के घर' में बड़ी स्वाभाविकता के साथ पूरे करा दिये जाते हैं। बच्चे स्वयं अपने कपड़े उतारते और पहनते हैं। शरीर को साबुन से धोना सिखाया जाता है। चीनी मिट्टी के बरतनों को उठाना, रखना, धोना और बरतना उन्हें बड़ी अच्छी तरह आ जाता है। यह सारा काम बड़ी शांति के साथ होता है, शोर तो जरा भी नहीं सुनाई देता। हाथ और उँगलियों के समायोजन का अभ्यास कई तरह से कराया जाता है। फ्रेम में लगे हुए चमड़े या कपड़े में बटन लगे होते हैं। बालक उँगलियों से बटनों को बन्द करते और खोलते हैं। फीते खोलने और बंद करने के अभ्यास अलग हैं। बागबानी में बालकों को हाथ से काम करना पड़ता है। मिट्टी सानना, ईंटे और खपड़े पाथना, उन्हें पकाना और फिर छोटे-छोटे झोपड़े तैयार करना, सभी कुछ वे सीख लेते हैं। पैरों के अभ्यास में, व्यायामशाला (Gymnasium) की फर्श पर रेखायें खींच कर, उन पर चलना सिखाया जाता है।

इन सारे कामों में इस बात का पूरा ध्यान रक्खा जाता है कि कोई भी काम अधूरा न छूट जाय। बालक स्वयं सारे काम करते हैं, शिक्षिका

केवल पथप्रदर्शन करती है। इसे स्वशिक्षा (auto-education) कहते हैं। सफलता मिलने पर बालकों को प्रसन्नता होती है और उनका साहस बढ़ता है। बालकों के साथी प्रशंसा करते जाते हैं और दैनिक-जीवन के अमूल्य काम वे स्वतः सीख लेते हैं।

संगीत की शिक्षा—मेरिया मांटेसरी का विचार है कि संगीत का आनंद लेने के लिए ईश्वर ने मनुष्य को एक अलग ज्ञानेंद्रिय प्रदान की है। अतः स्कूल में बालकों को संगीत का ज्ञान प्राप्त कराना आवश्यक है। मांटेसरी स्कूल में संगीत-शिक्षा का पूरा प्रबंध होता है। संगीत-शिक्षा में जिन उपदानों का प्रयोग होता है, वे शिक्षोपकरणों में शामिल नहीं हैं। संगीत के कुछ अभ्यास नीचे दिये जाते हैं।

(अ) स्वरों का पहचान—एक मेज पर धातु की बनी घंटियों की कतार (Row) लगी होती है। बच्चे हथौड़ी (Hammer) से उन पर हल्की-सी चोट लगाते हैं। हर-एक घंटी अपना अलग स्वर देती है। स्वरों में अंतर समझना, बालकों को स्वयं आ जाता है। धीरे-धीरे स्वरों के आरोह और अवरोह का ज्ञान उन्हें हो जाता है।

(ब) एकाग्रता बढ़ाने का अभ्यास—इस अभ्यास के लिए मौन-साधन पर जोर दिया गया है। वास्तव में यह भारतीय प्राणायाम और यौगिक क्रियाओं का प्रतिरूप है। प्राचीन आश्रमों में शायद वही दृश्य देखने में आता होगा, जो इस अभ्यास के समय मांटेसरी स्कूल में देखने को मिलता है। बच्चे एक साथ किसी कमरे में इस तरह बैठ जाते हैं कि वे जरा भी नहीं हिलते। बैठने के कई आसन (Postures) नियत हैं। जब बच्चे आराम और स्थिरता के साथ बैठते हैं उस समय पूर्ण शांति छा जाती है। कमरे में प्रकाश कम कर दिया जाता है। आँखों पर हाथ रख कर, ध्यानावस्थित मुद्रा में बैठने पर बच्चों को जो अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है, उसका वर्णन स्वयं मांटेसरी के शब्दों में सुनिये:—

"अपना ध्यान रखते हुए प्रत्येक बालक धीरे-धीरे अधिकाधिक मौन होता जाता है यहाँ तक कि पूर्ण रूप से गहरी शांति छा जाती है। यह सारी स्थिति इतने धीरे धीरे पैदा होती है, जैसे सूर्यास्त के समय संध्या की गहराई धीरे धीरे बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि इन क्षणों में हल्के शब्द जो पहले सुनाई न देते थे, अब सुनाई देने लगते हैं, जैसे घड़ी की चाल का स्वर, चिड़ियों का चहचहाना या तितली के पंखों की फड़फड़ाहट आदि। जैसे तारे रात्रि के सघन अंधकार को दूर किये बिना चमकते रहते हैं, उसी तरह समस्त संसार कुछ ऐसे अज्ञात स्वरों से भरा हुआ जान पड़ता है, जो शांति को भंग किये बिना सुनाई देते हैं।..........इन क्षणों में उन्मुक्त होकर खिल उठती है जैसे कमल की पंखुड़ियाँ। उस समय आत्मा का विकास होता है, वह आंतरिक, शक्तिशाली शांत और अनवरत नाद को श्रवण करने में समर्थ होता है।"

इस अभ्यास के अंत में बालकों का नाम केवल फुसफुसाहट के स्वर में पुकारा जाता है और हाजिरी भर दी जाती है। शांतिप्रियता का अभ्यास बालकों को वस्तुओं को धीरे से उठाने और धरने का आदी बना देता है। वे बोलते समय धीरे से बोलते हैं। शांति-स्थापन में सहयोग की भावना भी उदय होती है क्योंकि यह अभ्यास सफल तभी होता है जब सब बालक चुप रहें। विघ्न करने वाले बालकों का बहिष्कार कर दिया जाता है।

भाषा-ज्ञान की शिक्षा

भाषा की शिक्षा में कर्णेंद्रिय का खास महत्व है। स्वरों को कानों द्वारा ही स्पष्ट पहचाना जा सकता है। इसलिए कर्णेंद्रियों के अभ्यासों को भाषा-ज्ञान की पहली सीढ़ी समझना चाहिए। कर्णेंद्रियों की शिक्षा पूरी हो जाने पर भाषा-ज्ञान प्राप्त करना आसान हो जाता है। शब्दों का ज्ञान कराने में वस्तुओं (Object) की सहायता ली जाती है। शब्दों का ग्रहण करने में बालक को तीन सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं:—

(अ) वस्तु का नाम जानना ।

(ब) वस्तु का पहचानना ।

(स) वस्तु का नाम उच्चारण करना ।

मान लीजिये, बालकों को 'कलम' शब्द का ज्ञान कराना है। शिक्षिका पहले उसे कलम दिखाती है और ज़ोर से कई बार कहती है, "यह क़लम है।" बच्चे 'कलम' शब्द का शुद्ध उच्चारण सुनते हैं और वस्तु का नाम जान लेते हैं। फिर शिक्षिका कलम को कई वस्तुओं के साथ मिलाकर रख देती है और बालक से कहती है, 'कलम लाओ'। बालक पहचान कर कलम उठा लाता है। अंत में वह कलम दिखा कर पूछती है, "इसका क्या नाम है?" बच्चे उत्तर में 'कलम' शब्द कहते हैं। इस विधि से 'संज्ञा' शब्दों का ज्ञान आसानी से कराया जा सकता है। 'विशेषणों' का ज्ञान भी करीब-करीब इसी विधि द्वारा कराया जाता है। दो रंग की या दो प्रकार की एक वस्तु जैसे छोटी और बड़ी, या सफेद और काली सामने रख दी जाती है। शिक्षिका पहले बताती है—"यह छोटी है।" और "यह बड़ी है"। फिर वह बच्चों से कहती है, "बड़ी कलम लाओ" या 'छोटी कलम लाओ'। तात्पर्य यह है कि वस्तु के गुणों का ज्ञान तथा गुण के लिये उपयुक्त शब्द आसानी से सिखाया जा सकता है।

इस विधि द्वारा बालकों का शब्द-भांडार बढ़ता जाता है। वे शब्दों का शुद्ध अर्थ और शुद्ध प्रयोग समझ जाते हैं। शब्दों के समझने में ज्ञानेंद्रियों और पर्यवेक्षण का उपयोग करने से बालकों को भाषा पर अधिकार प्राप्त करने में बड़ी सरलता होती है।

लेखन की शिक्षा

ऊपर बताये गये ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों के अभ्यास लगभग चार वर्ष की अवस्था तक पूरे करा दिये जाते हैं। वास्तव में यह भावी शिक्षा की तैयारी मात्र है। शुद्ध, सात्विक और सुखप्रद वातावरण में सारे

बालक एक प्रकार से शिक्षा प्राप्त करते हुए, एक ढंग का व्यक्तित्व विकसित कर लेते हैं यद्यपि व्यक्तिगत भिन्नताओं को मरने नहीं दिया जाता। ठीक ढंग से अंग-संचालन; परिश्रम की आदत, आत्मनिर्भरता तथा अन्य अच्छे गुण उनमें आ जाते हैं। अब वह स्थिति आ जाती है, जब लिखने का अभ्यास कराया जा सकता है।

लिखने में उँगलियों को सधे हुए ढंग से चलाने की आवश्यकता होती है क्योंकि हाथ से कलम पकड़ना, उसे सधे हुये ढंग से चलाना और एक सतर पर लिखना आसान काम नहीं है। हाथ का सधना, बालक के सुषुम्नामंडल की स्वस्थता पर निर्भर है। स्नायु-दुर्बलता वाले बालकों का नियंत्रण हाथों और उँगलियों पर ठीक से नहीं रहता। इसलिए उनकी लिखावट अच्छी नहीं होती। स्वस्थ बालकों को इस नियंत्रण का अभ्यास कराना आवश्यक है। कुछ अभ्यास नीचे दिये जाते हैं।

(१) *उँगलियों का अभ्यास*—शिक्षोपकरण एक लड़की के बोर्ड पर चौकोर धातु के बने चार गुलाबी रंग के फ्रेम होते हैं। प्रत्येक में नीले रंग के ज्यामितीय शक्ल के घुन्डीदार लकड़ी के टुकड़े रहते हैं। दस रंग की पेंसिलों का बक्स और कागज साथ रहता है।

बालक एक टुकड़े को घुन्डी से पकड़ कर उठाता है और कागज पर रखता है। किसी रंग की मनचाही पेंसिल लेकर उस टुकड़े के चारों तरफ रेखा खींचता है। कागज पर वह शक्ल खिंच जाती है। इस अभ्यास के द्वारा बालकों की उँगलियाँ सध जाती हैं और हाथ, कलाई तथा उँगलियों का समायोजन (Coodination) होने से लिखने में सहायता मिलती है। रंगों का ज्ञान प्राप्त होता है और कलम पकड़ने की ताकत आ जाती है।

(२) *वर्णमाला का अभ्यास*—शिक्षोपकरण—एक बक्स में चिकने कागजों पर बलुए कागज के कटे हुए अक्षर चिपकाये जाते हैं और बालकों को दे दिये जाते हैं।

बालक इन अक्षरों पर अपनी उँगलियाँ फिराता है। अक्षर खुरदरे होते हैं, इसलिए स्पर्श द्वारा अक्षरों में आये हुए घुमाव (loops) का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। बालक जिस अक्षर पर उँगलियाँ फिराता है, शिक्षिका उस समय जोर से उस अक्षर का उच्चारण करती है। अभ्यास के अंत में अक्षरों की पहचान की परीक्षा के लिए, वह कहती है, 'क लाओ, या 'ज' लाओ। इस तरह बालक अक्षरों को अलग-अलग पहचानने लगते हैं।

(३) *शब्दों का अभ्यास*—अंत में अक्षरों को जोड़ कर शब्द बनाने का अभ्यास कराया जाता है। एक शब्द में आये हुए अक्षरों का नाम शिक्षिका बोलती है. बालक लाकर उन्हें क्रम से जोड़ते हैं, बस शब्द बन गया।

इन अभ्यासों को पूरा करने में बालक को बड़ा आनन्द आता है। जैसे वह शब्द बनाने लगा, वैसे ही उसका चाव इतना बढ़ता है कि शब्द बनाते-बनाते उसे कभी तृप्ति नहीं मिलती। जैसे एक बार चल कर बच्चा बार-बार चलने का प्रयत्न करता है, वैसे ही वह बार-बार लिखने का प्रयास करता है।

वाचन (Reading) की शिक्षा

लिखने की शिक्षा पूरी हो जाने के बाद वाचन की शिक्षा आरम्भ होती है। लिखने का अभ्यास वाचन की तैयारी समझना चाहिए। अंतर केवल इतना है कि लिखने में 'अक्षरों' के पहले सिखाकर बाद में 'शब्द' लिखना सिखाते हैं परन्तु वाचन में इसकी उल्टी विधि प्रयुक्त होती है अर्थात पहले 'शब्द' पढ़ना सिखाते हैं और उस शब्द में आये हुए प्रत्येक अक्षर को पढ़कर बताते हैं। एक बार में अंत में फिर शब्द जोर से पढ़ कर बता देते हैं। शब्द केवल संकेत मात्र होते हैं। उनसे किसी वस्तु, क्रिया या गुण का बोध होता है। अतः पढ़ते समय, शब्द के साथ संबंधित वस्तु को यथा समय अवश्य दिखाते हैं।

शिक्षोपकरण—कागज या कार्ड पर लिखे हुए शब्द या मुहावरे शब्द से बोध होने वाली वस्तु वाचन को शिक्षा में प्रयुक्त होते हैं।

अभ्यास—बालक के आगे कार्ड पर लिखा हुआ शब्द रख दिया जाता है। शिक्षिका जोर से शब्द शुद्ध और स्पष्ट उच्चारण करती है। बच्चे उसे दुहराते हैं। कई बार ऐसा करने के बाद शिक्षिका उस शब्द से संबंधित वस्तु और वह शब्द दोनों एक साथ रख देती है ताकि बालक दोनों का संबंध जान ले। शब्दों का ज्ञान हो जाने पर वाक्य-रचना का अभ्यास प्रारम्भ होता है। पहले यह वाक्य आज्ञा सूचक होते हैं, जैसे, 'यह पुस्तक लाओ', 'गिलास लाओ' आदि। वाचन की शिक्षा में 'क्रिया' (Activity) का विशेष महत्व है।

गणित की शिक्षा

ज्ञानेन्द्रियों और लेखन-कौशल की शिक्षा के अन्तर्गत आये हुए अभ्यासों में ज्यामितीय शक्लों के प्रयोग का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। इनके द्वारा ज्यामितीय शक्लों की परिभाषा आसानी से बालक समझ लेते हैं। अक्षर-ज्ञान के अभ्यास की तरह अंकों को जानने के अभ्यास कराये जाते हैं। अंकों का ज्ञान कराने में एक लम्बी सीढ़ी (Long stair) का प्रयोग किया जाता है। एक ही लम्बाई के दस छोटे डंडों को, जो एक साथ जोड़ कर फिट किये जा सकते हैं, जोड़-बाकी के नियम सिखाये जाते हैं। इन्हीं के द्वारा बालकों को इकाई का ज्ञान भी करा दिया जाता है।

मॉंटेसरी-विधि की आलोचना

मॉंटेसरी-विधि के महत्व को निर्धारित करते हुए विद्वान रस्क (Rusk) ने लिखा है—"सम्भवतः शिक्षा-विधि में इन्द्रिय-शिक्षा के समावेश से ही मॉंटेसरी को स्थायी यश प्राप्त हुआ है। पर हमारा यह विश्वास है कि उन्होंने इन्द्रिय-शिक्षा को आवश्यकता से अधिक

महत्व दे दिया है। शिक्षोपकरणों का प्रयोग और व्यावहारिक अभ्यास आदि मॉटेसरी विधि के स्थायी अंग हैं। 'बच्चों के घर' जैसे स्कूल की कल्पना करके उन्होंने नयी सामाजिक संस्था को जन्म दिया है। (जो परिवार और स्कूल दोनों के काम को पूरा करती है।) यह इस विधि की मुख्य विशेषता है। इससे भी अधिक खास बात यह है कि मनोवैज्ञानिक तत्वों को अपनाकर चलने मे बालकों का व्यक्तित्व निखर उठता है। शिक्षा के क्षेत्र में आज जो नवीनतम प्रवृत्तियाँ काम कर रही हैं, उनकी छाया इस विधि में स्पष्ट दिखायी देती है और यही भावी स्कूलों (Schools of tomorrow) की मुख्य विशेषता होगी।"

गुण

(१) *नैतिक गुणों का विकास*—इस विधि द्वारा शिक्षा-प्राप्त बालकों में नैतिक गुणों का विकास बड़े स्वाभाविक ढंग से होता है। बच्चों को प्रत्येक काम में पूर्ण स्वतंत्रता रहती है, मगर फिर भी उनमें अनुशासन, उत्तरदायित्व, सहयोग, और स्वावलंबन जैसे गुण उत्पन्न हो जाते हैं। जिस समाज में ऐसे बालक होते हैं, उसकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

(२) *रचनात्मक शक्ति का विकास तथा श्रम का मूल्य*—गत दो शताब्दियों में सामाजिक-व्यवस्था में भारी परिवर्तन हो रहा है। मनुष्य की समानता स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा सामाजिक और आर्थिक असमानता को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य को 'श्रम' का मूल्य समझाया जाय और उसे कोई न कोई समाजोपयोगी कार्य करने के लिए बाध्य किया जाय। निर्बल-सबल, गरीब-अमीर, नीच और ऊँच का प्रचलित भेद 'श्रम' के आधार पर बना है। सबल, अमीर और उच्च वर्ग के लोग साधन सम्पन्न होने के कारण भोग-विलास में निमग्न रहते हैं और निर्बल, गरीब तथा

नीच श्रेणी के लोग 'श्रम' करके मरते-पिसते हैं। समाज में यह द्वैतभाव पैदा करनेवाली पुरानी शिक्षा है। बचपन में इसकी नींव जम जाती है। वही बालक आगे चलकर समाज में द्वैतभाव पैदा करते हैं। अब जिस समाज का निर्माण होने जा रहा है, उसमें यह द्वैतभाव न रहेगा। उसकी तैयारी नयी शिक्षा द्वारा हो रही है। शिक्षा में रचनात्मक कार्य और शारीरिक श्रम से प्रेम करना हर एक बालक को बताया जाता है। मॉंटेसरी विधि से पढ़कर बालक एक संघटित समाज की रचना करने में समर्थ होंगे। वे श्रम करते हैं और रचनात्मक कार्य करते हैं। उनके समाज में भेद-भाव नहीं दिखाई देता।

(३) *परिवार तथा स्कूल का समन्वय*—बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा परिवार में होती है। यही शिक्षा की असली नींव है। एलमर (M. C. Elmer) नामक विद्वान ने अपनी पुस्तक (The Sociology of Family) में लिखा है कि बालक परिवार में होने वाले दैनिक कृत्यों तथा सांस्कृतिक उत्सवों से बहुत-कुछ शिक्षा प्राप्त कर लेता है। दूसरे, शिक्षा-ग्रहण करने में माता-पिता का प्रेम बड़ा सहायक होता है। इस स्नेहमय वातावरण में जितनी व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त होती है, उतनी अन्यत्र पाना असंभव है। दुर्भाग्य से वर्तमान औद्योगीकरण के कारण परिवार की नींव जड़ से हिल रही है। बड़े-बड़े नगरों में माता-पिता दोनों नौकरी या मजदूरी करने निकल जाते हैं। बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं हो पाता। हम पीछे लिख चुके हैं कि रोम में यही समस्या उठ खड़ी हुई थी, तभी बच्चों के घर की कल्पना की गई। अर्थात् एक ऐसे स्कूल की आवश्यकता अनुभव की गई जो परिवार का भी काम करे। मॉंटेसरी स्कूल में 'परिवार' तथा 'स्कूल' दोनों का समन्वय हुआ है। यहाँ शिक्षिका माता के रूप में बालकों को देख-रेख करती है और घरेलू जीवन के स्वाभाविक वातावरण में उन्हें पढ़ाती भी है।

(४) स्वशिक्षण (Auto-education) का अभ्यास—सर जॉन

ऐडम्स (Sir John Adams) ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा-सिद्धांत का विकास' (Evolution of Education of Theory) में शैक्षिक प्रक्रिया (Educational Process) का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि प्रथम चरण में शिक्षा का सूत्र अध्यापक के हाथ में रहता है अर्थात् अध्यापक पर पढ़ाने की जिम्मेदारी होती है। दूसरे चरण में अध्यापक और विद्यार्थी दोनों का सहयोग होता है और जिम्मेदारी बराबर होती है। अंतिम चरण में शिक्षा का सूत्र विद्यार्थी के हाथ में आ जाता है अर्थात् वह अपनी पढ़ाई स्वयं करने में समर्थ हो जाता है। सरजान के मतानुसार शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थी को इस तीसरी सीढ़ी पर पहुँचाना है। दूसरे शब्दों में शिक्षण का उद्देश्य बालक को स्वशिक्षा (Auto-education) के योग्य बनाना है। मॉंटेसरी-विधि इस शैक्षिक-प्रक्रिया को बचपन में ही पूरा करा देती है। बालक प्रारंभ में ही अपनी शिक्षा पूरी करने के योग्य हो जाते हैं।

(५) *मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुरूप*—ज्ञानेंद्रियों की शिक्षा का बचपन में विशेष महत्व रहता है। चार-पाँच वर्ष की आयु में बालक प्रत्यय-निर्माण (Concept formation) में असमर्थ होता है। प्रारंभ में यदि शिक्षा का प्रारम्भ प्रत्यय (Concept) से होता है तो सफलता नहीं मिलती। बालक 'प्रत्यय' को समझ नहीं पाता। इसलिए 'स्थूल से सूक्ष्म की ओर' (From concrete to Abstract) वाले सिद्धांत को लेकर इन्द्रिय-शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। मॉंटेसरी विधि में शिक्षोपकरण इसी आधार पर बनाये गये हैं। वस्तुओं का ज्ञानेंद्रियों द्वारा पर्यवेक्षण करके प्रत्यय-निर्माण का काम पूरा कराया जाता है। आगे चलकर बालकों के विचार स्पष्ट तथा सुलझे हुए होते हैं। कारण, संसार का ज्ञान वे मनोवैज्ञानिक विधि से प्राप्त करते हैं। उनकी विचार तथा विवेक शक्ति का अभिवर्धन सुचारु रूप से हो जाता है। यह सब इतनी आसानी से इसलिए हो जाता है कि उस विधि से बालकों को पढ़ने में आत्मिक संतोष मिलता है। मेरिया का कहना है कि वर्तमान

समय में राजनीतिज्ञों का ध्यान पेट की समस्या हल करने में उलझा हुआ है। पर रोटी मिलने से ही शांति नहीं मिलती। मनुष्य की आंतरिक-आध्यात्मिक भूख कहीं अधिक प्रबल होती है। मेरिया माँटेसरी का दावा है कि इस विधि द्वारा बालक की आध्यात्मिक भूख को तृप्त किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, बालक के शारीरिक और सामाजिक विकास में यह विधि सहायता देती है। उनकी रुचि, प्रवणता, तथा व्यक्तित्व के अन्य अंग मुखरित हो उठते हैं। बालक की सामाजिक शक्ति भी माँटेसरी स्कूल में भलीभाँति संतुष्ट होती है। शिक्षाशास्त्री ड्यूवी ने 'समाज' की परिभाषा देते हुए लिखा है कि सच्चा समाज वही है, जिसके प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के कार्यों में योग दें। इस प्रकार का सच्चा समाज माँटेसरी स्कूल में देखने को मिलता है।

दोष

(१) विधि खर्चीली है—माँटेसरी-विधि से पढ़ाने में खर्च अधिक बैठता है। साधारण ढंग के स्कूलों में जितना शुल्क पड़ता है, उसका तिगुना माँटेसरी स्कूलों में लिया जाता है। भारत जैसे गरीब देश में इस विधि से लाभ उठाना सम्भव नहीं जान पड़ता। हाँ, केवल थोड़े से धनी मनुष्य अपने बच्चों के लिए इसका प्रबन्ध कर सकते हैं। सार्वजनिक शिक्षा के लिए आर्थिक दृष्टि से यह बिल्कुल अनुपयुक्त जान पड़ती है। खर्च के बढ़ने का कारण इस विधि में प्रयुक्त मँहगे शिक्षोपकरण हैं। आलोचक रस्क (Rusk) ने बड़े दुख के साथ लिखा है कि इस विधि का जन्म रोम में गरीब बालकों की शिक्षा के लिए हुआ था और आज गरीब ही उसके लाभों से वंचित हैं, केवल अमीर उससे लाभ उठाते हैं।

(२) शिक्षोपकरणों का आडम्बर—पूर्व - वर्णित शिक्षोपकरणों की लम्बी-सूची देखकर ही पाठक इस विधि के महान आडम्बर का

परिचय प्राप्त कर सकते हैं। माँटेसरी स्कूलों में यह आडम्बर अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। शिक्षोपकरणों को जबरदस्ती ठूँसा जाता है। इस कारण से यहाँ शिक्षा-सम्बन्धी काम कम होना है दिखावा अधिक।

(३) *विशेष प्रकार के शिक्षकों की आवश्यकता*—यह विधि बड़ी 'टेकनिकल' है। सभी प्रकार के मनुष्य शिक्षक नहीं बन सकते और न इस विधि से सभी शिक्षा दे सकते हैं। इसके लिए केवल महिलाएँ उपयुक्त समझी जाती हैं। भारतीय महिला-समाज अभी इस दशा में नहीं आ पाया है कि एक बड़ी संख्या में स्त्रियों को इस कार्य के लिए लिया जा सके। परिवार और गृहस्थी छोड़कर विवाहित स्त्रियाँ इस ओर आना अभी पसन्द नहीं करतीं। भारत में कौमार्यव्रत बहुत कम स्त्रियाँ धारण करती हैं। जो स्त्रियाँ इस ओर आना भी चाहें, उनमें स्नेह तथा उदारता के गुण अवश्य होना चाहिएँ। अतः वर्तमान समय में शिक्षकों की कमी इस विधि की सफलता में एक व्यावहारिक कठिनाई के रूप में उपस्थित हैं।

(४) *संस्कृति की अवहेलना*—शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है बालकों को मानव-संस्कृतिरूपी धरोहर सौंपना। इसीलिए स्कूलों में इतिहास, साहित्य और कला का ज्ञान कराया जाता है। माँटेसरी विधि इस ओर से पूर्णतया उदासीन है। इन विषयों की पढ़ाई यहाँ होती ही नहीं। बालकों में सौन्दर्यानुभूति (Aesthetic sense) का उदय ही नहीं होता। इसके विपरीत बालकों में सुख और विलास की प्रवृत्ति जोर पकड़ती है। भौतिकता (Materietion) की नींव उनके हृदय में बचपन से ही जम जाती है।

(५) *आकर्षक परन्तु असफल*—देखने में यह विधि आकर्षक है परन्तु इससे पढ़ाई का परिणाम ठीक नहीं निकलता। साहित्य और इतिहास आदि तो इसके द्वारा पढ़ाये ही नहीं जा सकते। अपितु भाषा और गणित का प्रारम्भिक ज्ञान कराने में भी सफलता नहीं मिलती।

(६) **समय का अपव्यय**—अक्षर, अंक, और वस्तु-ज्ञान के पाठ पूरे कराने में महीनों लग जाते हैं और उसके बाद जो कुछ सीखा जाता है, वह केवल दो-चार दिन का काम जान पड़ता है। समय का बड़ा अपव्यय होता है। बाल्यकाल के इस कीमती समय को व्यर्थ के खेलों में उलझाकर नष्ट करना अनुचित है।

(७) *स्वस्थ और साधारण बुद्धि के बालकों के लिए अनुपयुक्त*—अच्छा होता यदि मेरिया ने इस विधि को केवल अल्पबुद्धिवाले बालकों के लिए ही सुरक्षित रक्खा होता। सफाई रखने, कपड़े पहनने आदि जैसी क्रियाओं को शिक्षाक्रम में स्थान देना उचित नहीं, क्योंकि यह कार्य बालक घर में या अपने आप सीख लेते हैं। हाँ, ऐसी क्रियाएँ जड़ और अल्प-बुद्धिवाले बालकों को अवश्य सिखाना चाहिए। स्थूल शिक्षोपकरणों का उपयोग भी ऐसे ही बालकों के लिए मनोवैज्ञानिक रीति से उपयुक्त है क्योंकि मंद-बुद्धिवाले बालकों में विचार-शक्ति नहीं होती। इसीलिये मेयर (Meyer) नामक आलोचक ने स्पष्ट लिखा है कि जो विधि विभिन्न मंद-बुद्धिवाले बालकों के लिये बनी, वह स्वस्थ-बुद्धि वालों के लिये कैसे काम दे सकती है। पं० सीताराम चतुर्वेदी के शब्दों में "मौन्तेस्सौरी प्रणाली एक विराट् विडंबना है, जो मंद-बुद्धि और जड़ बालकों के लिये भले ही लाभकारी हो, किंतु साधारण बालक की शिक्षा के लिए अत्यन्त अव्यावहारिक, व्ययसाध्य, आडम्बरपूर्ण और निरर्थक है।"

(८) कई विरोधाभास—(Paradoxe's) मेरिया मॉंटेसरी ने बताया है कि उनकी शिक्षाविधि पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है, परन्तु उन्होंने न तो कोई ऐसे प्रमाण दिये हैं और न आधार जिनके द्वारा विधि की वैज्ञानिकता सिद्ध की जा सके। कई बातें जिन्हें वे विधि का उद्देश्य बताती हैं, पूर्ण नहीं होतीं और यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उसके उलटे परिणाम नजर आते हैं।

(क) *शिक्षोपकरणों का विरोधाभास*—स्थूल शिक्षोपकरणों के सहारे बालकों को प्रत्यय-निर्माण (Concept formation) में सहायता देना, इस विधि का उद्देश्य है, पर वास्तव में शिक्षोपकरण प्रत्यय-निर्माण में बाधा देते हैं। इनसे खेलते-खेलते बालक उन्हीं में इतना रम जाता है कि उसके विचार-विकास का काम ही ठप हो जाता है। अतः यह जिस काम के लिए बने हैं, उसी में यह बाधा पहुँचाते हैं।

(ख) *रोचकता का विरोधाभास*—मांटेसरी ने पग-पग पर प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह विधि बड़ी मनोरंजक है। आकर्षक और रंग-बिरंगे शिक्षोपकरणों के कारण बालक बड़े उत्साह और रुचि के साथ काम में लगे रहते हैं। पर क्या यह सही है? नित्य-प्रति एक ही तरह के टुकड़ों से उलझना क्या उन्हें आनंद देता होगा? रोज ही बेलनों को रखना, बटन लगाना, हलका-भारी तौलना, क्या यह सारे काम कुछ दिन बाद यंत्रवत् (machanical) न जान पड़ते होंगे?

(ग) *अनुशासन का विरोधाभास*—मांटेसरी का कहना है कि इस विधि से पढ़ाने में अनुशासन की समस्या उठती ही नहीं। इस पर विश्वास नहीं होता। विभिन्न वातावरणों से आनेवाले बालक कभी भी एक तरह से चुप नहीं बैठ सकते। वास्तविकता यह है कि कक्षा में हर समय 'गृध्र दृष्टि से ताकने वाली अध्यापिका के भय से वे चुपचाप अपने कार्य में लगे रहते हैं।' यहाँ संयम नहीं भय का राज्य है। यहाँ पर दिखाई पड़नेवाला मौन तथा विनय भय का परिणाम है। वह भी भय कैसा? अनुशासन भंग करनेवाले को स्कूल से निकाल देना। क्या इस बुराई को नष्ट करने के बजाय बुराई करनेवाले की हत्या करना न कहेंगे? वास्तव में रोग को नष्ट करने के स्थान पर इसे रोगी को नष्ट करना कहेंगे।

(घ) *मनोवैज्ञानिक विरोधाभास*—मांटेसरी का दावा है कि उनकी विधि पूर्णरूप से मनोवैज्ञानिक है परन्तु प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम

टेर्न (William Steron) ने अपनी पुस्तक (The Psychology of early childhord) में लिखा है कि मांटेसरी-विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। खाना बनाना, परोसना, वर्तन साफ करना आदि काम छोटी आयु के बालकों के लिए अस्वाभाविक हैं। इन्हें शिक्षा का प्रत्यक्ष उद्देश्य (Conscious aim) बनाना अनुचित है। यह कितनी अस्वाभाविकता की बात है कि बच्चे इस छोटी आयु में इतना व्यवस्थित और नियमबद्ध जीवन बिताते हैं। जो जीवन आगे पच्चीस वर्ष में बिताना होगा, उसे अभी बिताने के लिये बालक को बाध्य किया जाता है।